वर्ष : ६ अंक : १०

अक्टूबर : १९८७

विवेक शिखा

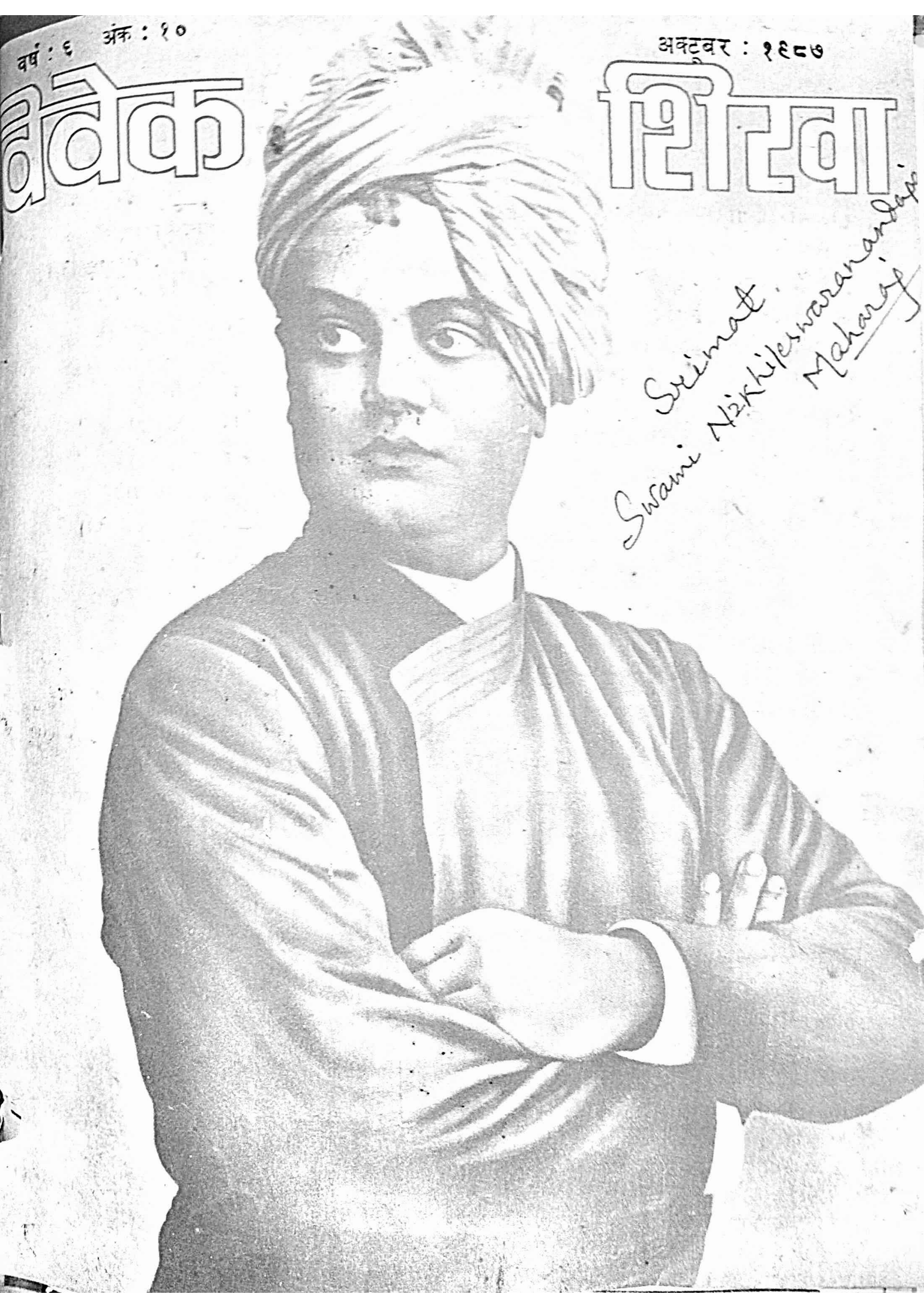

Srimat
Swami Nikhileswarananda
Maharaj

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टांटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक वसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलिज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगांव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र
२१. श्रीराम विलास चौधरी—मुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद व्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगांव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगांव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—
लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गठोडिया अपर बाजार (रांची
३४. कुमारी चुक चुक—वेलगांव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती, महाराष्ट्र
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. आओ गदाधर देव ! (कविता)	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. भगवत-प्राप्ति का तात्पर्य	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	३
४. लीला सागर के तट पर	श्री अभिय कुमार वन्दोपाध्याय	६
५. दुर्गापूजा का बदलता स्वरूप	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	१८
६. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान	स्वामी विदेहात्मानन्द	१९
७. पावापुरी की तीर्थयात्रा	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२२
१०. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ अक्टूबर—१९८७ अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप विखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	१५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मन में सदा यह भाव रखना कि घर-द्वार, परिवार इनमें से कुछ भी तुम्हारा नहीं है, सब भगवान् के हैं; तुम भगवान के दास हो, उन्हीं की आज्ञा का पालन करने संसार में आए हो। यह भाव दृढ़ हो जाने पर वास्तव में किसी भी वस्तु के प्रति ममत्व-बुद्धि नहीं रह जाती।

(२)

जिस प्रकार बालक एक हाथ से खम्भा पकड़कर जोरों से गोल-गोल घूमता है—उसे गिर पड़ने का डर नहीं होता—उसी प्रकार ईश्वर को पक्का पकड़कर संसार के सभी काम करो, इससे तुम विपत्ति से मुक्त रहोगे।

(३)

जप करना यानी निर्जन में चुपचाप भगवान् का नाम लेना। एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक उनका नाम जपते रहने से उनके रूप के दर्शन होते हैं—उनका साक्षात्कार होता है। जैसे जंजीर से बँधी हुई बल्ली गंगा में डुबोई हुई हो और जंजीर का दूसरा छोर तीर पर बँधा हुआ हो; तो जंजीर की एक-एक कड़ी पकड़कर आगे बढ़ते हुए, पानी में उतर कर उसी तरह चलते-चलते बल्ली का स्पर्श किया जा सकता है. ठीक वैसे ही जप करते-करते मग्न हो जाने पर धीरे-धीरे भगवान् का साक्षात्कार होता है।

(४)

कूपमण्डूक की तरह न बनो। कुएँ में रहने वाले मेढ़क को कुएँ से बड़ा या अच्छा कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी तरह जो कट्टर होते हैं उन्हें अपने मत से बढ़कर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

आओ गदाधर देव !

— डॉ० केदारनाथ लाभ

साधु न संत, न योगी-यती, न तपी न व्रती, न हुआ संन्यासी
कर्म न धर्म, न दान, न पुण्य, न सेवी कभी मथुरा औ काशी;
आज थका-सा, लुटा-सा, हताशा में, बैठा हूँ, छायी है घोर उदासी
आओ गदाधर देव ! कृपाकर, सूना है जीवन, आँखें हैं प्यासी ॥१॥

देह में गेह में लीन रहा, अति दीन बना, सुख का अभिलाषी
रूप के मेले में खोया रहा, नित सोया रहा, सपनों का विलासी;
ऐसे ही बीती है सारी उमर, करुणाकर, एक व्यथा की कथा-सी
आओ गदाधर देव ! कृपाकर, सूना है जीवन, आँखें हैं प्यासी ॥२॥

योग-वियोग में, भोग-नियोग में, यौवन बीत गया मधुमासी
वे जो कभी थे बने अपने, सपने हो गये उर-अंतरवासी;
ऐसे में और पुकारूँ किसे ? अपने घर में ही बना हूँ प्रवासी
आओ गदाधर देव ! कृपा कर, सूना है जीवन, आँखें हैं प्यासी ॥३॥

कर्म के कोल्हू में बैल-सा मैं, चलता ही रहा गति का अभ्यासी
और सदा भटका मरु में, लिये आशा मृषा-सी, पिपासा चिता-सी;
रात को नींद, न प्रात को चैन, न शान्ति मिली अन्तःसलिला-सी
आओ गदाधर देव ! कृपाकर, सूना है जीवन, आँखें हैं प्यासी ॥४॥

देव ! तुम्हारी दयालुता का, करुणा का, कृपा का रहा विश्वासी
आओगे, रूप दिखाओगे दिव्य, हरोगे तृषा हिय की अविनाशी;
माना, नरेन न लाटू हूँ किन्तु, तुम्हारे ही प्रेम का हूँ प्रत्याशी
आओ गदाधर देव ! कृपाकर, सूना है जीवन, आँखें हैं प्यासी ॥५॥

भगवत्-प्राप्ति का तात्पर्य

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
सहाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन।

श्री रामकृष्ण ने कहा है कि मानव-जीवन का उद्देश्य भगवत् प्राप्ति है। हमलोग भी प्रायः ईश्वर-प्राप्ति, भगवत्-प्राप्ति की बातें करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि वे हमलोगों को लब्ध नहीं हैं, उनकी प्राप्ति करनी होगी तथा इसके उपाय-स्वरूप शास्त्र अथवा गुरु निर्देशित पथ का अनुसरण करना होगा। शास्त्रानुसार, भगवत का नाम गुणगान भक्ति प्राप्ति का एक उपाय है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार, भगवान के नाम-कीर्तन को व्रत के रूप में जो व्यक्ति ग्रहण करता है भगवान का नाम करते-करते नाम के प्रति उसका अनुराग उत्पन्न हो जाता है। उसी अनुराग के फलस्वरूप उसका अन्तर द्रवित हो जाता है। तब वह ऊँचे स्वर से हँसता है, नाचता है, गाता है तथा लोग क्या सोचेंगे—इसकी परवाह नहीं रखता है। ठाकुर (श्री रामकृष्ण) ने भी कहा है, 'भगवान का नाम-गुण-कीर्तन भक्ति-प्राप्ति का एक उपाय है। उन्होंने और भी कहा है, 'उसके द्वारा बन्धन मुक्ति होती है।'

गीता में है—

'न तदस्ति विना यत् स्यान्मया भूतं चराचरम्'—इस जगत में स्थावर जंगम कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो मुझसे पृथक् हो। फिर भगवान यदि हमलोगों के भीतर हैं, बाहर हैं, सर्वत्र ओत-प्रोत हैं तो हमलोग उनकी प्राप्ति क्या करेंगे? जो वस्तु नहीं है, उसको पाना ही प्राप्ति करना है।

अतएव, हमलोग बात-बात में कहते हैं—ईश्वर-प्राप्ति, भगवत-प्राप्ति, किन्तु इस कथन का तात्पर्य अच्छी तरह सोचकर देखते नहीं हैं। सोचते नहीं हैं कि भगवत्-प्राप्ति करने का क्या अर्थ है? यह प्रश्न हमलोगों में से प्रत्येक को अपने-अपने मन से करना होगा। भगवत्-प्राप्ति किसको कहते हैं? कौन किसकी प्राप्ति करता है? कैसे करता है? भगवान कौन सी वस्तु हैं?

सर्वप्रथम सोचकर देखें कि अवतार या भगवान का क्या अर्थ है। 'भग' का अर्थ होता है ऐश्वर्य—प्रभुत्व, वीर्य, यश, सौन्दर्य, ज्ञान, वैराग्य आदि। ऐश्वर्यों से जो परिपूर्ण हैं, वे ही भगवान हैं। समस्त कल्याणकारी गुण जहाँ परिपूर्ण हैं, अवगुण का लेशमात्र भी जहाँ नहीं है—वे ही भगवान हैं। भगवान के सम्बन्ध में मनुष्य की यही कल्पना है। ऐसे भगवान के बारे में कौन विचार करेगा? कौन जानेगा कि भगवान हैं? भक्त विचार करेंगे। कैसे? अपने हृदय के द्वारा। भक्त का हृदय एक दर्पण है। उसी दर्पण में सर्वव्यापी तत्त्व शुद्ध मनोज्ञ रूप में प्रतिफलित होंगे। जिन भक्तों ने भगवान का अनुभव करने की चेष्टा की है, उन्होंने श्लोक पर श्लोक लिखकर, पृष्ठ पर पृष्ठ भरकर उनका वर्णन किया है। इन्हीं वर्णनों के आधार पर हमलोग अपने-अपने अनुसार भगवान के स्वरूप के संम्बन्ध में धारणा करते हैं। हृदय जितना ही शुद्ध होगा, उस शुद्ध हृदय में भगवान के शुद्ध स्वरूप की उतनी ही धारणा होगी, वे हमलोगों के निकट स्पष्ट से स्पष्टतर होंगे। हमलोग जो उनको भिन्न-भिन्न रूपों में देखते हैं, उसका कारण है हमलोगों के देखने की शक्ति में परिवर्तन। इस प्रकार, भगवान का चिन्तन करते-करते हमलोग जितना ही उनकी ओर बढ़ेंगेउत नी ही, उनके सम्बन्ध में हमलोगों की धारणा बदलती जायगी।

मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान की धारणा करता है। मनुष्य की दृष्टि सीमित है। कल्पना थोड़ी दूर और जाती है, किन्तु वह भी सीमित है। भगवान

सीमित नहीं है। मन के द्वारा जिसकी धारणा नहीं की जा सकती उसकी धारणा बुद्धि या इन्द्रियों के द्वारा संभव नहीं हो सकती है। समस्त जगत की जो धात्री हैं उन जगज्जननी को शिशु के समान दो छोटे-छोटे हाथों द्वारा पकड़ने की हम चेष्टा करते हैं। फिर, दो छोटे-छोटे हाथ ही तो शिशु के सम्बल है। उन्हीं हाथों के द्वारा जब वह माँ को पकड़ने जाता है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता है।

इसी प्रकार भक्त भी बुद्धि से अगम्य भगवान को बुद्धि-ग्राह्य बनाकर अपने छोटे-छोटे अपुष्ट, दुर्बल हाथों के द्वारा पकड़ने जाता है तो फिर भगवान को हम कैसे जान सकते हैं? मनुष्य की बुद्धि में कोई तत्त्व जितना प्रतिभात होता है, वह उतना ही समझ सकता है। भगवान को हमलोग सम्पूर्ण रूप से समझ सकेंगे—इस प्रकार की दुराकांक्षा से कोई लाभ नहीं है। उनके सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत धारणा भी नहीं है। चूँकि मन भिन्न-भिन्न है, इसीलिए धारणाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। देवता का अर्थ होता है—पूर्णता के आदर्श ने जहाँ रूप धारण किया है, वही मेरा देवता है।

भगवत्-प्राप्ति का अर्थ किसी अलौकिक शक्ति की प्राप्ति नहीं है। भगवान के सम्बन्ध में जो श्रेष्ठ धारणा है, उसी धारणा का चिन्तन करते-करते मनुष्य जब उसी रूप में परिवर्तित हो जाता है तो उसे भगवत्-प्राप्ति कहते हैं। भगवान हमलोगों के भीतर हैं, फिर भी राग-द्वेष, कामना-वासनादि, अशुद्धि संकीर्णतादि के कारण हम उन्हें पकड़ नहीं पा रहे हैं। इन सारे दोषों के कारण हमारा चित्त-दर्पण मलिन हो गया है। यह दर्पण जब शुद्ध होगा तब उसमें भगवान का शुद्ध रूप प्रतिफलित होगा। ठाकुर ने कहा है, "शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक ही है।" अन्तःकरण शुद्ध होने पर, हमलोगों के भीतर की यह मलिनता, अपवित्रता आदि के पूर्णतया दूर हो जाने पर भगवान में और हममें कोई पार्थक्य नहीं रहेगा। तब 'मैं' नहीं रहेगा। केवल 'वे' ही रहेंगे"—ठाकुर ने ऐसा कहा है। इसी 'मैं' ने हमें क्षुद्र बनाकर रखा है, भगवान् से पृथक् करके रखा है, जन्म-मृत्यु के अधीन नश्वर करके रखा है। जब यह चला जायगा तभी भगवत्-प्राप्ति होगी। 'मैं' मरने से सारे जंजाल मिट जायेंगे।

उपासना का अर्थ है भगवान के निकट जाना अर्थात् उनके स्वरूप की कल्पना करके उनका चिन्तन करना। चिन्तन करते-करते जो जीव क्षुद्र है वही अनन्त हो जायगा। ठाकुर ने जैसा कहा है—"झिंगुर भौंरे का एक प्रकार का चिन्तन करते-करते भौंरा ही हो जाता है।" स्वामीजी ने भी कहा है, "भूत का चिन्तन करते-करते भूत हो जायगा और भगवान का चिन्तन करते करते भगवान हो जायगा।" इसी कारण शास्त्रों का आदेश है, 'सब समय भगवान का चिन्तन करो, उनका नाम करो, सर्वदा उनको मन के भीतर रखो।

इसी प्रकार हमलोगों को आगे बढ़ना होगा परिणाम क्या होगा—यह सोचने से कोई लाभ नहीं। परिसमाप्ति की धारणा तुम अभी कैसे करोगे? कहाँ जाकर चलने पर विराम होगा—यह तुम भी नहीं जानते हो और जिन्होंने तुमसे कहा है, वे भी नहीं जानते। शास्त्र का कथन है, "चरैवेति, आगे बढ़ते चलो" चलते-चलते एक जगह पहुँचकर देखोगे कि और चलने की जरूरत नहीं है। जो पाने का है, सब हो गया है। अप्राप्त कुछ नहीं है। चलने का अंत वहीं पर होगा। वह कहाँ हैं? तुम्हारी आत्मा में। सभी धर्मों का कहना है—भगवान को हृदय में देखो, वहीं पर उनको पाओगे।' कई लोग कहते हैं, उतना क्या हम लोगों से संभव है?' ठाकुर ने कहा है—'छत पर चढ़ना होगा' सीढ़ी के प्रत्येक सोपान (step) पर पैर रखकर ही तो छत पर जाऊँगा। जहाँ पर हूँ, वहीं से एक कदम बढ़ाया, उसके बाद और एक कदम, इसी प्रकार क्रमशः उनकी ओर बढ़ जाऊँगा। आगे बढ़ रहा हूँ कि नहीं, यह समझने का उपाय क्या है, माप-दण्ड क्या है? श्रीमद्भागवत में है—'एक आदमी मानो दो-तीन दिनों से खा नहीं पाया। इस अनाहार के कारण उसे क्षुधा का कष्ट है, मन में असंतोष है, शरीर में दुर्बलता का बोध होता है।

उसको खाने देने पर जब वह थोड़ा-थोड़ा करके खाता है तो प्रत्येक ग्रास खाते-खाते उसका भूख जनित कष्ट दूर होता है, मन का असंतोष दूर होता जाता है एवं शरीर में बल आता है। यह तीनों एक साथ ही होता है, एक-एक करके नहीं। इसी प्रकार भगवान की शरण में जो व्यक्ति आता है उसकी शरणागति जिस परिमाण में रहती है उसी के अनुसार भगवान के प्रति आकर्षण बढ़ता है और भगवान के सिवा अन्य वस्तुओं के प्रति आकर्षण घटता जाता है तथा भगवान के सम्बन्ध में उसकी धारणा और विश्वास स्पष्टतर होते हैं। यह हमें याद रखना होगा। अनेक समय हमलोग भगवान के नाम पर रो रोकर व्याकुल होते हैं। किन्तु आँखों के ये अश्रुकण यदि हमारे मन की मलिनता को धोन दें, स्वभाव को बदल न दें, अंतःकरण को पवित्र न करें, आचरण को शुद्ध न करें तो इन्हें व्यर्थ ही समझना होगा। जब देखेंगे कि भगवान के लिए जिस प्रकार आँसू बहा रहे हैं, इसी प्रकार विषय-वस्तुओं के लिए भी आँसू बहते हैं, तो समझना होगा कि ये आँसू भगवान के लिए नहीं हैं। भगवान से ठीक-ठीक प्रेम करने पर विषयों के प्रति आसक्ति उसी परिमाण में कम हो जाती है। श्रीठाकुर ने कहा है, 'पूर्व दिशा की ओर जितना ही बढ़ोगे, पश्चिम दिशा से उतनी ही दूर होते जाओगे।' हम भगवान की ओर जितना बढ़ेंगे, हमारी अधोगामी वृत्ति उतनी ही लुप्त होगी। मन शुद्ध होगा, कोई भी चिन्तन अशुद्ध नहीं होगा। जिसकी ऐसी अवस्था हुई है, उसके द्वारा किसी का अकल्याण नहीं होगा, जगत के लिए वह आशीर्वाद स्वरूप होगा।

श्रीठाकुर की वाणी है, 'पहले हृदय-दर्पण को शुद्ध करो।' फिर उसके ऊपर पूर्ण आदर्श का जो प्रतिफलन होगा, उसको भगवान समझना। और उनकी ही जिस मानव के भीतर अभिव्यक्ति हो, उन्हें अवतार समझना। अवतार के सम्बन्ध में हमलोगों की कोई धारणा ही नहीं है। भ्रान्त धारणा को लेकर हम कलह करते हैं—तुम्हारा भगवान सत्य कि मेरा भगवान सत्य? काली बड़ी या कृष्ण बड़े? शिव बड़े या विष्णु? हमलोग न तो कृष्ण का अर्थ समझते हैं और न काली का। केवल कुछ कल्पनाओं को लेकर विवाद करते हैं। कल्पना भी यदि शुद्ध हो तो वह मनुष्य को चरम लक्ष्य तक पहुँचा सकती है। यही है कल्पना की सार्थकता। यदि हम दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते जायँ, लक्ष्य को पकड़कर निष्ठा के साथ चलते रहें तो हम कितना भी अपवित्र क्यों न हों, हमारी धारणाएँ कितनी भी असम्पूर्ण क्यों न हों, धीरे-धीरे वे सभी धारणाएँ पूर्ण होने के लिए बाध्य होंगी एवं अन्ततोगत्वा हम चरम आदर्श तक पहुँचेंगे ही।

श्रीठाकुर ने कहा है, 'विभिन्न मतों या पथों पर चलकर एक ही लक्ष्य तक पहुँचोगे'। वे अपने अनुभव के आधार पर दिखाते हैं कि हम मन को जितना ही शुद्ध करेंगे, मन उस शुद्धतर वस्तु की उतनी ही धारणा कर पायगा। शास्त्रों का कहना है कि भगवान का जब चिन्तन करोगे तो राग-द्वेष से शून्य होकर चिन्तन करोगे। राग-द्वेष शून्य होने का अर्थ है—मन की मलिनता का न रहना। हम जैसे-जैसे भगवान के पथ पर जायेंगे, वैसे-वैसे हमारी अभिज्ञता बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में यों कहें कि हमलोगों का अन्तर शुद्ध होगा। उसी शुद्ध मन में भगवान का प्रतिफलन होगा। प्रभु यीशु ने कहा है, भगवान को हम तभी देखेंगे जब उनकी तरह ही हम शुद्ध होंगे।

हम जब श्री रामकृष्ण देव की उपासना करेंगे, चिन्तन करेंगे, तब उनकी शुद्धता, पवित्रता, सर्ववासना शून्यता, त्यागमय जीवन, भगवान के भाव में तन्मयता—इन्हीं गुणों का चिन्तन करना होगा। ये गुण ही हैं श्रीरामकृष्ण के स्वरूप। उनके चरित्र की विवेचना हम जितनी ही अधिक करेंगे उनके सम्बन्ध में हमारी धारणा उतनी ही शुद्ध होगी। फलस्वरूप, हम किस मार्ग का अनुसरण करें—यह समझ पायेंगे। किन्तु उनका नाम लें और जैसी खुशी वैसा जीवन-यापन करें तो अपने आप को प्रवंचना देना होगा तथा लक्ष्य की ओर जाना ही नहीं होगा। भगवान का नाम लेते समय नाम-नामी अभिन्न, नाम के साथ वे ही हैं—इस बात को हम याद रखें। फिर नाम लेने पर पग-पग पर हमारे चित्त की शुद्धि हो रही है—इसे भी याद रखें। भगवान का चिन्तन करते-करते हम तन्मय हो जायेंगे, हमलोगों का 'मैं' पन निश्चिह्न हो जायगा—यह शुभ दिन हमलोगों के जीवन में आये—यही प्रार्थना करें।

[उद्बोधन, शारदीया संख्या, बंगाब्द १३९१ में प्रकाशित 'भगवान लाभेर तात्पर्य' नामक प्रबन्ध का आभार हिन्दी रूपान्तर। —सं०]

संस्मरण

लीला सागर के तट पर

—श्री अमिय कुमार बन्दोपाध्याय
अनुवादिका—डॉ० शैल पाण्डेय
इलाहाबाद

[श्री अमिय कुमार बन्दोपाध्याय बंगला दैनिक, आनन्द बाजार पत्रिका के समाचार सम्पादक हैं। उनके बंगला लेख 'लीला सागरेर तीरे' का अनुवाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका डॉ० शैल पाण्डेय ने किया है। —सं०]

वहाँ साधुजन प्रतिदिन कृष्ण-कथा-कीर्तन करते। उनके अनुग्रह से वह मधुर कथा मैं सुनता। उनकी कथा के प्रत्येक पद को श्रद्धापूर्वक श्रवण करने के लिए मेरा चित्त उन्मुख रहता। इस प्रकार कृष्ण-कथा सुनते-सुनते मेरे चित्त में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में रति अथवा आसक्ति जागृत हुई।

(व्यासदेव के प्रति नारद)—श्रीमद्भागवत १/५/२६

शैशव में ही श्रीरामकृण ने अपनी अपार कृपा से खींच लिया था। उस क्षण से जीवन की इस सांध्यवेला तक का समय उनके लीलासागर के तट पर ही बीता है। क्या पाया, क्या बना—इसका हिसाब करने का अवकाश ही नहीं मिला। इतना ही जाना है कि नेत्र इसे छोड़ कर और कुछ देखना ही नहीं चाहते। मन और किसी में तृप्ति ही नहीं पाता। जीवन यहीं अपना अर्थ खोज पाता है। मृत्यु—अपना तात्पर्य। और आत्मा—अपना चरम परिचय और परम आश्रय। शान्ति यहाँ है सर्वव्यापी। आनन्द यहाँ है अगाध और अबाध।

इस लीलासागर के तट पर पड़े रहने में बहुत कुछ है— अनेक दिशाएँ, अनेक भावनाएँ, अनेक अभिज्ञताएँ, अनेक अनुभूतियाँ। इसमें मुझे एक बहुत बड़ी चीज मिली—साधु-दर्शन और साधु-संग। सच कहा जाय तो श्रीरामकृष्ण की कृपा और श्रीराकृष्णगत प्राण साधुओं की कृपा, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह कृपा ही हमारी परम सम्पदा है; एकमात्र सम्बल है; भवसागर पार जाने की संपत्ति है; अक्षय धन है; इस राज्य के सब रहस्यों की चाभी है। क्या भागवत यों ही कह रहे हैं; तीर्थ एवं देवता मनुष्य को पवित्र करते हैं धीरे-धीरे। साधुजन पवित्र करते हैं अपने दर्शन मात्र से ही—**दर्शनादेव साधवः** (१०/४८/३१)··· अग्निदेव का आश्रय लेने पर शीत एवं अंधकार का भय नहीं रहता। साधुओं की सेवा करने से जड़ता, संसार-भय और अज्ञान दूर होते हैं। (११/२६/३०)

जो लोग अत्यधिक साधु-संग प्राप्त करते हैं, साधु-माहात्म्य-उपलब्धि में उनकी एकमात्र बाधा हो सकती है—यह निकटता ही। इस विषय में भागवत में ही सतर्क वाणी है; नैकट्य मनुष्य में अनादर का कारण होता है। जिस प्रकार गंगातीरवासी गंगा को छोड़कर विशुद्धि के लिए अन्य तीर्थजल के पास जाते हैं। (१०।८४।३१)। इस 'नैकट्य बाधा' को दूर करने का उपाय है—श्रद्धा। **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।** (गीता ४/३९).

एक उपमा की सहायता से इस भाव को अभिव्यक्त किया जा सकता है। कोई शैशव से ही किसी सांगीतिक घराने में महान सुर साधकों के सान्निध्य में रहता रहा है। बालक देखता है—सभी उन संगीतज्ञों को बड़ा कहते हैं। बालक के मन में भी इन उस्तादों के सम्बन्ध में एक प्रकार का श्रद्धामय भाव अंकुरित हो उठता है। इसके अतिरिक्त ये लोग भी बालक से प्रेम करते हैं। इस प्रेम को बालक समझता है। यही नहीं समझता कि ये

गुणी बड़े क्यों हैं ! वह तो यह देखता है कि उनमें से कोई जब तानपूरा उठा लेता है, तब उनके कण्ठ से अनायास राग-रागिनियाँ निकल पड़ती हैं। कोई जब वीणा को अँगुली से स्पर्श करता है, तब कितने सहज रूप में स्वरों का प्रकाश चारों दिशाओं को भर देता हैं। बालक सोचता है, इसमें बहादुरी की क्या बात है ? इच्छा करने पर यह तो सभी कर सकते हैं, यह उसके मन में आता है। क्योंकि उसने उन गुणीजनों का स्नेह प्राप्त किया है और उसके चित्त में श्रद्धा का भाव जगा है, इसीलिए बात वहीं पर समाप्त नहीं होती।

बालक धीरे-धीरे तरुण होता है। स्वयं भी नाड़ा बाँधता है। तालीम लेता है। रियाज करता है। साथ ही संगीतशास्त्र पढ़ता है। और भी बहुत से लोगों का गाना-बजाना सुनता है। तब शुरू होती है उसकी उपलब्धि। वह समझने लगता है—जरूरी है एकाग्रता; जरूरी है निष्ठा; जरूरी है परम्परा की शिक्षा, उपजीव्य एवं लक्ष्य के विषय में स्पष्ट, परिच्छन्न, बौद्धिक और तात्विक बोध। इसके पश्चात् परिपूर्णता के लिए आवश्यक है अध्यवसाय। परम्परा में निमज्जित रह कर ही साधना संभव है। यह न होने पर राग-रागिनी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार-विश्लेषण के साथ परिचित नहीं हुआ जा सकता। सर्वोपरि, कायमनोवाक्य से, इस कार्य में अपने को नियोजित न रखने से सिद्धि लाभ दुराशा ही है, वह सिद्धि चाहे जिस स्तर की हो। (सिद्धि के अनेक स्तर अवश्य ही हैं। यह न होने पर पूर्णसिद्ध की बातें क्यों रहतीं ?)

अब नवीन साधक अपने आबाल्य परिचित गुणियों का गाना-बजाना फिर सुनता है। राग-रागिनियों के निगूढ़ रस-परिवेषण में शिल्पीगण कितने अनायास ही, कितने दुरूह अलंकरण के लक्ष्य में उपनीत हो रहे हैं। कितने सुन्दर सहज भाव से अनायास चल रहा है उनका पेश। कितना अनवद्य है उनका एक स्वर से दूसरे स्वर में सुडौल संचरण—मीड़। क्या अपूर्व है उनकी श्वासयुक्त स्वर के साथ कमोवेश शब्द को जोड़ कर मनोग्राही स्वरावर्तन की सृष्टि—गमक। कितना हृदयग्राही है उनके स्वरों की व्यंजना। एक स्वर से सात स्वरों पर जाना—मूर्च्छना। आपात दृष्टि में अथवा तात्क्षणिक श्रुति में—कितना अनायास से अर्जित वस्तु का उनका प्रकाश—आदायगी। परिश्रम पकड़ में ही नहीं आ रहा है। कष्टकल्पित होने पर यह व्यायाम या एक्सरसाइज हो सकता है, शिल्प नहीं। इस बार विस्मित होने की बारी है नवीन संगीत-साधक के। अब वह थोड़ा-थोड़ा समझ रहा है कि केवल प्रयत्न या साधना से यह सिद्धि असम्भव है। इसके लिए कुछ और आवश्यक है, वह है गुरु कृपा तथा भगवत्कृपा।

जो उपमा दी गयी एवं इस प्रसंग में जो कहा गया, वह सब अध्यात्म-साधना के सम्बन्ध में भी प्रयोज्य है। इस साधना-पथ में भी जिन्होंने सिद्धि-लाभ किया है अथवा बहुत कुछ आयत्त किया है, हो सकता है वे भी आपात दृष्टि से, अनायास ही उस तरह के रसास्वादन के उसी प्रकार के उदाहरण हो सकते हैं। किन्तु, उनके इस रसधन रूप को देख कर यह सोचना भूल होगी कि उन लोगों में उस भाव का प्रकाश एक दिन में एवं अनायास ही घटित हुआ है। इसके नेपथ्य में बहुनिभृत, नीरव मुहूर्तों के जप-तप, ध्यान-भजन का इतिहास है। यहाँ भी है वही परम्परा। वही दीक्षालाभ। वही आपात सहज-सुन्दर साधु जीवन गढ़ने के नेपथ्य में संयत, कठोर, सुदीर्घ और एकाग्र साधना। वही गुरुकृपा और भगवत्कृपा।

और एक बात है। साधना का तत्व या साध्य-वस्तु यदि है विशुद्ध राग-रागिनी, तो शास्त्र है उसकी स्वर-लिपि एवं साधु जीवन है उसी राग-रागिनी का परिवेषण —साधु तत्व और शास्त्र का दृश्यमय रूप। गाना सुनते-सुनते जिस प्रकार तैयार होते हैं कर्ण या अन्तःश्रुति; साधु-संग करते-करते उसी प्रकार मिलती है साधु-दर्शन की दृष्टि और साधु कृपा अनुभव करने का अन्तः करण। साधु-कृपा से ही प्राप्त होती है शास्त्र-कृपा और भगवत्कृपा।

बेलुड़-मठ के साधुओं को अलग-अलग रूप में देखना नहीं सीखा। उन्हें देखा है संघ के साथ ही मिला कर।

उनकी शुभेच्छा की अमोघ क्रियाशीलता का अनुभव मिलित भाव से ही किया है। वे स्वयं संघमूर्ति श्रीरामकृष्ण के अंगीभूत हैं। उनका प्रेम और आशीर्वाद उसी उत्स से उत्सारित है।

परमतीर्थ बेलुड़-मठ में गंगातीर पर चुपचाप बैठे-बैठे ठाकुर की बात, साधुओं की बात उस दिन भी सोच रहा था। इस चिन्तन में ही तो शांति-मुक्ति-आनन्द है — हमलोगों के लिए। बुधवार १३ मार्च १९८५, अपराह्न पौने तीन का समय। हठात् मठ का शांत सुन्दर वातावरण मानो कैसा तो गहन गंभीर हो उठा। प्रकाश मानो कुछ म्लान हो उठा, पवन जैसे स्थिर। वृक्ष के पत्तों ने अकस्मात् हिलना-डुलना बन्द कर दिया। स्वामीजी के बगीचे के गौरैया-कबूतर-शालिक-तोते-सब कहाँ चले गये? कुछ देर पहले तक कई गिलहरियाँ चक्कर काट रही थीं। वे सभी न जाने कहाँ चली गयीं। जलाशय के किनारे, स्वामी जी के घाट की सीढ़ियों पर गंगा का छल छल करता तटगान अकस्मात स्तब्ध हो हो उठा। उस परिवर्तित परिवेश में हृदय-गह्वर से उठा नाम। केवल नाम।

इसके बाद मानो कैसे तो यंत्रचालित की तरह उपस्थित हुआ श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी (प्रभु महाराज) के निवास पर। मठ के प्रवीण साधुगण, कर्मीवृन्द-सभी उस समय उसी स्थान पर थे। किसी के मुख पर कोई बात नहीं। तीन····तीन बज कर पाँच····दश ·····बारह·····पन्द्रह·····सतरह। कितना महासुन्दर शेष।

श्रीश्री माँ की इस सन्तान के महाप्रयाण पर मन में उठ रही थी, माँ की ही बात: "कितना ही बड़ा महापुरुष क्यों न हो, देहधारण करके आने पर देह का सब भोग लेना ही पड़ता है। तब भी अन्तर यही है, साधारण मनुष्य जाते हैं रोते-रोते, और वे जाते हैं हँसते हँसते—मृत्यु मानो खेल हो।" (श्रीश्रीमायेर कथा, प्रथम खंड, पृ० ९६ षष्ठ संस्करण)।

एक कमरे में हैं स्वामी हिरण्मयानन्द, स्वामी आत्मस्थानन्द, स्वामी गीतानन्द, स्वामी प्रभानन्द आदि प्रमुख साधुजन। आवश्यक विवेचना चल रही है। निर्देश आदि जा रहे हैं। स्वामी वन्दनानन्द फोन पर मद्रास मठ के साथ बात कर रहे हैं।

धीरे धीरे मैं निकल आया। साढ़े तीन बज गये हैं। नियमानुसार मठ का द्वार खोल दिया गया है। बाद में कई दिनों तक यहाँ भक्तजनों की जो बाढ़ आयी, इस समय भी मानो वह मृदु तरंग रूप में है। बाहर दो महिलाएँ एक दूसरे को पकड़ कर 'पितृ-वियोग' की वेदना से रो रही हैं। उनमें से एक, गत कई वर्षों से अपने 'बाबा' को देखने प्रतिदिन मठ आती रही हैं।

मुझे भी आवश्यकता थी, एकान्त की। धीरे-धीरे चला आया खूब निर्जन एक कोने में, गंगा के तीर पर एक वृक्ष के नीचे।

स्मृति-तरी धीरे-धीरे पीछे की ओर चलने लगी। स्कूल-जीवन के आठ वर्ष बीते थे आसनसोल में। तभी से स्वामी मृत्युञ्जयानन्द जी (नगेन महाराज) के सूत्र से रामकृष्ण-मिशन के साथ अच्छेद्य-योग में आबद्ध हूँ। तत्पश्चात १९४७ के अंतिम दिनों से कलकत्ते में हूँ—अर्थात् बेलुड़-मठ के साथ सीधा सम्बन्ध। उस समय संघगुरु थे श्रीमत् स्वामी विरजानन्द जी महाराज। मेरे देखे हुए प्रथम संघगुरु। और महा सचिव थे श्रीमत् स्वामी माधवानन्द जी महाराज।

श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी (प्रभु महाराज) तब भी मठ में अत्यंत सुपरिचित नाम था। श्रद्धेय व्यक्तित्व। सह-सचिव। प्रथम परिचय में कुछ प्रश्न किये थे। आपादमस्तक एक बार देख लिया था। उस आशीर्वाद-दायिनी दृष्टि से फिर कभी वंचित नहीं हुआ।

प्रभु महाराज को परवर्ती काल में प्रधानत: श्रद्धा पाते हुए ही देखा है। उस समय देखा था प्रधानत: श्रद्धा-ज्ञापन करते हुए। उस समय के अध्यक्ष महाराज एवं उपाध्यक्ष महाराज के साथ उनके दर्शन-साक्षात्कार को मेरे द्वारा देखे जाने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु

अन्यान्य गुरुजन एवं प्राचीन साधुओं के प्रति उनके सश्रद्ध आचरण के अजस्र चित्र हृदय में सुरक्षित हैं। स्वामी ओंकारानन्द जी (अनंग महाराज), स्वामी कैलाशानन्द जी एवं स्वामी यतीश्वरानन्द जी के प्रति उनकी प्रीति मिश्रित श्रद्धा भूलने योग्य नहीं है। यतीश्वरानन्द जी के साथ अपनी निविड़ सख्यता की बात उन्होंने स्वयं ही यतीश्वरानन्दजी के भंडारा वाले दिन की सभा में कही थी।

तब मिशन-ऑफिस के ही एक कमरे में बैठते थे—पूजनीय भरत महाराज। प्रतिदिन संध्या के समय अनेक साधुजन आकर मिशन-ऑफिस के बरामदे में बेंचों पर बैठते थे। मिशन-ऑफिस के अनेकों प्रवीण साधु बैठते थे। उनमें उस समय के अन्यतम सह-सचिव स्वामी शाश्वतानन्द जी भी थे। सारदापीठ से नियमित आते थे स्वामी विमुक्तानन्द जी। स्वामी तेजसानन्द जी उस समय विद्यामंदिर के कार्यों में खूब व्यस्त रहते थे। फिर भी उन्हें बीच-बीच में वहाँ देखा जाता। पूजनीय सूर्य महाराज (स्वामी निर्वाणानन्द जी) यहाँ कम आते थे। आने पर भी काम की बात लेकर आते और वह पूरा करते ही शीघ्र लौट जाते। एक सीमा पर मठ का भण्डार एवं दूसरी सीमा पर गोशाला तक समस्त क्षेत्र को लेकर उन्हें अजस्र कार्य रहते थे। स्वामी गंगेशानन्द के आने पर परिवेश सहज हो उठता।

जो पुराने भक्त इस सभा में साधुओं के चरणों की धूल के लोभ से आते, उन सभी को तो मैं नहीं पहचानता था। किन्तु तीन लोगों की बात बहुत याद आती है। वे हैं—डाक्टर यतीन बाबू, खगेन बाबू और पशुपति बाबू।

प्रभु महाराज के समीप अपने व्यक्तिगत एक बड़े ऋण की बात यहाँ स्वीकार करता हूँ। नहीं जानता, उन्होंने साधुओं के प्रति मेरे आकर्षण की बात कैसे जान ली थी। वे यह भी जानते थे कि मैं लजीला एवं गुरुजनों के विषय में संकोची था। उन्होंने ही मुझे उस समय के प्रवीण साधुओं से परिचित करा दिया था। स्वामी निर्वेदानन्दजी (अनादि महाराज) को दर्शन-प्रणाम करने का, स्वामी निखिलानन्द जी के साथ परिचित होने का एवं स्वामी यतीश्वरानन्द जी की वाणी-सुधा के आस्वादन का सौभाग्य प्रभु महाराज की कृपा से ही हुआ था।

स्वामी विशुद्धानन्द जी को मैं प्रेम करता हूँ, यह बात वे जानते थे। उनके मठ में आते ही प्रभु महाराज कहते, 'जितेन महाराज आये हैं। जाओ-जाओ उनका दर्शन कर आओ।' पूज्यपाद माधवानन्द जी के सम्बन्ध में मेरे भय को दूर करने में उन्होंने प्रचुर सहायता की थी। 'उनका बाह्य ही इतना गंभीर है। अन्तर प्रेम से भरा है। माँ के कितने दुलारे पुत्र हैं वे! और क्या वेदान्त सीखोगे? उनकी छींक-खाँसी में भी वेदान्त है।'—माधवानन्द जी के विषय में बातों-बातों में कही गयी प्रभु-महाराज की यह उक्ति मेरे जीवन में मूल्यवान दिग्दर्शन बन गयी है। परवर्ती काल में माधवानन्दजी को प्रणाम करने के बाद जब प्रभु महाराज को प्रणाम करने जाता, तब वे कौतुक से कहते, : 'क्यों? भय समाप्त हो रहा है? उनके प्रेम को थोड़ा-थोड़ा समझ पा रहे हो?' बेलुड़-मठ से दूर अन्यान्य केन्द्रों में अथवा निर्जन में, मठ के जो पुराने साधु रहते थे, उनमें से अनेक के विषय में प्रभु महाराज से ही पहली बार सुना। इनमें से अनेक नाम हैं—स्वामी अतुलानन्द (गुरुदास महाराज), स्वामी शान्तानन्द, 'तपस्वी' सुरेन महाराज और स्वामी प्रेमेशानन्द। इनमें से स्वामी शान्तानन्दजी ने अन्त में लम्बे समय तक मठ में रह कर महासमाधि प्राप्त की थी। अन्य लोग दूर ही रहते थे। उन लोगों को दर्शन-प्रणाम करने के सौभाग्य के मूल में प्रभु महाराज की ही प्राथमिक प्रेरणा थी। वे स्वयं श्रद्धामय थे, इसी से श्रद्धाभाजनों के प्रति श्रद्धाशील थे एवं अभाजनों के चित्त में भी श्रद्धा का संचार करने में समर्थ थे।

पूजनीय प्रभु महाराज के और एक आचरण ने मुझे उसी दिन से मुग्ध कर रखा है। वे जितने दिन तक सह-सचिव एवं बाद में सचिव रहे, उतने दिन तक मठ में जाते ही उस दृश्य को देखने के लोभ में उनका अनुगमन करता था। उनके अध्यक्ष होने के बाद यह दृश्य देखने का सुयोग कम हो गया, तब भी मैं एकदम वंचित

कभी नहीं हुआ। दृश्य था—मन्दिरों में उनका प्रणाम। विशेषकर ठाकुर को उनका प्रणाम। और भी विशेषकर के माँ को उनका प्रणाम-निवेदन। प्रणाम निवेदन या आत्म-निवेदन? कितना सौंदर्यमय एवं माधुर्यमय था वह निवेदन! जीवन में और क्या आध्यात्मिक अभिज्ञता घटित हुई है, नहीं जानता; किन्तु निश्चित रूप से कह सकता हूँ, प्रभु महाराज का प्रणाम-दर्शन मेरे जीवन की एक महान आध्यात्मिक अभिज्ञता रही है।

दक्षिण-भारत के किसी-किसी मन्दिर में, विशेष-विशेष क्षणों में दीप-धूप से सृष्ट वातावरण में बज उठते हैं वाद्य-वृन्द—बीन, मृदंग-मुरज-मुरली। मंगलवाद्यम्—नादस्वरम् बोल के साथ नृत्य के माध्यम से देवता की प्रणति निवेदित होती है। समस्त मन्दिर में एक अलौकिक परिवेश की सृष्टि होती है।

नहीं जानता, ये छोटे-नाटे व्यक्ति (अंतिम दिनों में जिन्हें देख कर याद आता महात्मा गांधी के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू का एक वर्णन : 'A frail little bag of bones'.) मन्दिर में प्रणाम करने जाकर किस जादू से मानो उसी तरह के एक परिमंडल की रचना करते। उस समय जैसे मन्दिर के परिवेश का एक-एक परमाणु नृत्य के ताल में सुन्दर हो उठता। मानो अदृश्य से बज उठता वन्दनागीत। मानो देवता मनुष्य के रूप में उतर आते थे और मनुष्य रूपान्तरित हो जाते थे देवता में।

उनके माँ को प्रणाम करते समय, ऐसा लगता, मानो माँ बच्चे को छोड़ना नहीं चाह रही हैं। बच्चा भी बार-बार माँ को प्रणाम कर रहा है। कभी-कभी लक्ष्य करता कि उनके दोनों जुड़े हुए हाथ बार-बार ऊपर-नीचे हो रहे हैं और दोनों अधर कुछ-कुछ काँप रहे हैं। माँ से क्या कुछ कहते थे? कुछ प्रार्थना करते थे? इस प्रश्न का उत्तर मुझे ज्ञात नहीं। तब भी मन में होता उनके समस्त अस्तित्व से प्रचण्ड नैशब्द्य में संचारित हो रहा है एक महामंत्र : नाहं नाहं, तुहुँ तुहुँ!

उनका यह प्रणाम देख-देख कर दो चीजें मन में गड़कर बैठ गयी हैं।

एक॥ हमारे-मठ-मिशन को वस्तुतः ठाकुर और माँ चला रहे हैं।

दो॥ जप-ध्यान-स्वाध्याय कितना करता हूँ, यह तो मन ही मन खूब अच्छी तरह ही जानता हूँ। यही यदि प्रणाम है, तो ठाकुर और माँ को ठीक-ठीक रूप में प्रणाम करना क्या जीवन में एक बार भी घटित होगा?

मठ में दुर्गापूजा और कालीपूजा में, पहले, वे नियमित रूप से उपस्थित रहते थे। अंतिम दिनों में, दर्शन-प्रणाम करने आकर सभी को अनुप्रेरणा दे जाते। १९८४ई० काली-पूजा के दिन वे महानिशा में धीरे-धीरे मन्दिर में आये। सेवकगण अत्यंत चिन्तित दिखाई पड़ रहे थे। महाराज के मुख पर प्रशांति थी। आकर धीरे-धीरे प्रणाम किया—माँ काली को। कुछ समय तक बैठे। इसके बाद पुनः प्रणाम किया। लौट गये धीरे-धीरे। उस दिन उनका निःशब्द आना-जाना और प्रणाम जिन्होंने लक्ष्य किया था, उन्होंने सारे जीवन का संपद, एक मूल्यवान ध्यानचित्र पा लिया था।

संघ-गुरु के आसन पर बैठने के बहुत पूर्व प्रभु-महाराज के जो कार्य स्मरणीय हैं, उनमें विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—प्रकाशन के क्षेत्र में उनका आग्रह, ज्ञान-निष्ठा और कृतित्व। उनके 'अद्वैत-आश्रम' के साथ युक्त रहने के समय में वहाँ के प्रकाशनों को देखने पर इस बात की सत्यता जानी जा सकती है। उसी समय एक बार स्वामीजी का 'Complete works' दो खण्डों में प्रकाशित हुआ था। मुद्रण के क्षेत्र में उस युग में इस प्रकार की एक परिकल्पना ही क्रांतिकारी थी।

अंतिम समय तक उनका यह आग्रह रहा। आधुनिक मुद्रण में 'फोटो टाइप सेटिंग' (पी. टी. एस.), ऑफसेट, रोटरी, कलर प्रिंटिंग, थ्री. डी. प्रिंटिंग, जापान ने इस क्षेत्र में किस तरह से सफलता अर्जित की है इत्यादि विषयों में उनके प्रश्न से आनन्द बाजार पत्रिका के स्वर्गीय सम्पादक तथा कर्णधार अशोक कुमार सरकार विस्मित हो गये थे। प्रभु महाराज चाहते थे कि मठ-मिशन की पुस्तकों की छपाई, कागज और बंधाई अच्छी

हो। मूल्य न्यायोचित हो। किसी भी अच्छी पुस्तक के बहुत दिनों तक 'आउट ऑफ प्रिन्ट' रहने पर उन्हें खराब लगता। आजकल मठ-मठ के प्रकाशन कार्य से वे विशेष संतुष्ट थे।

संघ गुरु रहने के समय में उनके उत्साह से प्रकाशित ग्रंथों में उल्लेख्य हैं—स्वामी सारदेशानन्द की 'श्री श्री मायेर स्मृति कथा' (अंग्रेजी संस्करण सहित) और स्वामी यतीश्वरानन्द की 'Meditation and Spiritual life'. (सुना है इस तरह की और भी दो पुस्तकों के लिए उपादान है। उन सबको ग्रंथाकार में प्राप्त कर हमलोग उपकृत होंगे।) प्रभु महाराज द्वारा अनूदित 'Brahma Sutras according to Sribhashya' पुस्तक को प्रकाशकों ने स्वयं ही प्रयास करके प्रकाशित किया, किन्तु प्रभु महाराज ने जिस उम्र में इतने कार्यों के बीच पुस्तक का कार्य समाप्त किया, वह सचमुच विस्मयजनक है। इसके अतिरिक्त वे 'स्वामी शुद्धानन्देर रचना-संग्रह' और 'कथामृत' के उद्बोधन संस्करण के लिए मूल्यवान निर्देश रख गये हैं।

१९६६ ई० की २२ फरवरी को स्वामी वीरेश्वरानन्द जी संघगुरु के पद पर अधिष्ठित हुए। उनकी आयु उस समय थी ७४ वर्ष। मठ-मिशन के अन्तरंग लोग जानते हैं कि इस पद पर वे आयेंगे—ऐसी कोई सम्भावना इसके कुछ समय पूर्व तक भी नहीं थी। श्रीरामकृष्ण अपने संघ को स्वयं ही चलाते हैं, वह ऐसे तो समझ में नहीं आता। बीच-बीच में प्रकट होता है। प्रभु महाराज का यह निर्वाचन ऐसी ही एक घटना है। एक के बाद एक, दो महान संन्यासियों (स्वामी माधवानन्द जी और स्वामी यतीश्वरानन्द जी) को खोकर साधु एवं भक्तमंडली जिस समय विचलित हो गयी थी एवं बाहर से जिस समय संघ पर जड़वादी राजनीतिक दलों का आघात हो रहा था, उस समय संघ के विश्वस्त, परीक्षित इस सेनानी ने अधिनायक के दुरूह दायित्व को ग्रहण किया।

संघ-गुरु के आसन पर बैठने के बाद से इस क्षीण तनु, नातिदीर्घ मनुष्य का व्यक्तित्व दिन पर दिन बढ़ते-बढ़ते आकाशचुंबी हो उठा। उनकी कर्मधारा ने क्रमशः प्रसारित और बेगवान होते-होते मानो समुद्र का रूप ले लिया। एक ओर हजार-हजार नर-नारियों ने उनके माध्यम से श्रीरामकृष्ण का आश्रय लाभ किया। दूसरी ओर निर्मित हो उठे कितने ही मन्दिर। ठाकुर को उन्होंने कितने ही स्थानों पर प्रतिष्ठित किया। इसी के साथ बड़ा सेवा-कार्य। तरुण-समाज एवं नारी-समाज रामकृष्ण भावधारा के ग्रहण एवं प्रसार में विशेष-रूप से आगे आये। १९६६ ई० से १९८५ ई० तक के आधुनिक इतिहास का विस्तृत वर्णन करने का प्रयोजन इस समय नहीं है।

इस प्रसंग में केवल दो भावनाएँ निवेदन करूँगा।

एक ।। इस पर्व में अधिनायक की भूमिका ग्रहण कर उन्होंने स्वयं जो किया एवं साधु और भक्तजनों को जिसमें उद्बुद्ध किया, उसके मूल में था एक अगाध विश्वास। इसी विश्वास को उन्होंने निर्देश में परिणत किया। वह निर्देश : Our good name must be effective. हमारी साधुता को फलप्रसू होना होगा। बृहत्तर समाज एवं जनजीवन में हमें एक दुर्निवार और श्रद्धेय शक्ति के रूप में परिगणित होना होगा, जिससे इस शक्ति का सभी संभ्रम एवं सम्मान करना सीखें। और उनका 'Order of the day' या 'दिन की वाणी' थी : Hold on to the ideal. Hold on to Sri Ramakrishna, The Holy Mother and Swamiji. आदर्श को पकड़े रहो। पकड़े रहो श्रीरामकृष्ण, श्री माँ और स्वामी जी को। मिशन की वार्षिक सभा में उनके कण्ठ से उच्चरित हुआ था—यह निर्देश।

दो ।। अपने संघगुरुओं, प्राचीन साधुओं एवं स्वामी वीरेश्वरानन्दजी (दशम संघगुरु) के जीवन के इस पर्व को नेत्रों के समक्ष इस प्रकार से न देखने पर क्या समझा जा सकता है कि कर्मयोगी कैसे होते हैं? इन लोगों का जीवन ही गीता के इस तत्व को समझने में हमारी सहायता करता है; 'अज्ञजन आसक्त होकर जिस प्रकार कार्य करते हैं, ज्ञानी जन उसे ही करते हैं अनासक्त चित्त

से, लोकरक्षार्थ। (गीता ३।२५)। स्वामीजी की इसी वाणी को अनुभवगम्य करती है; 'आदर्श पुरुष वे ही हैं, जो गंभीरतम निर्जनता एवं निस्तब्धता के मध्य तीव्र कर्मी हैं एवं प्रबल कर्मशीलता के मध्य मरुभूमि की निस्तब्धता एवं नि:संगता का अनुभव करते हैं।···यान-वाहन मुखरित महानगरी में भ्रमण करने पर भी उनका मन शान्त रहता है, मानो वे नि:शब्द गुहा में रह रहे हों, इस पर भी उनका मन तीव्र भाव से कर्म कर रहा है। कर्मयोग का यही आदर्श है।'—(वाणी और रचना, प्रथम खंड, प्रथम संस्करण, पृ० ५०-५१)।

साधारण मनुष्य थोड़ा जप-ध्यान करके, थोड़ा निर्जनवास और साधु संग करके, ठाकुर और माँ के पास हठ जनाकर (प्रार्थना करके) संसार से छुट्टी पा सकता है। दिव्य आनन्द में जीवन बिता दे सकता है। छुट्टी नहीं मिलती है आचार्यों को, साधुओं को; क्योंकि वे कायमनोवाक्य से ठाकुर के चरणों में आत्मसमर्पित हैं, क्योंकि वे ठाकुर के साथ योगयुक्त हैं, क्योंकि उनका कर्म एकदम उन्हीं का कर्म नहीं है। ठाकुर का कर्म है। इसी से तो उनका कर्म है—'कर्मयोग'। उनको देखने पर समझा जाता है कर्मयोग—मानवीय व्यापार ही नहीं है। वह ईश्वरीय है। वह कर्त्तव्य नहीं है। समाज-सेवा नहीं है। महान साधुजन 'जीवन्मृत' हैं। वे महत्तम अर्थ में हैं, 'निष्कर्मा'। जीवन्मुक्त। इसी से उनके हाड़-हाड़ में जादू का खेल चलता है। उनकी अस्थि से वज्र बनता है। उनके 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' व्रत से मनुष्य पाता है अभ्युदय और नि:श्रेयस—जागतिक उन्नयन और आध्यात्मिक कल्याण।

और भी एक आश्चर्य है इन प्राचीन महान साधुओं के जीवन में। इस विषय में मेरी दृष्टि में सभी एकाकार हैं। तब भी आपाततः दृष्टान्त रूप में प्रभु महाराज की बात ली जाय। संघ-गुरु होने के बाद कितने ही लोगों से उन्हें मिलना पड़ा है। सोचना पड़ा है कितने ही लोगों के लिए। कितनी ही तरह के मनुष्यों की कितनी तरह की समस्याओं को सुनना और उनका समाधान उन्हें करना पड़ा है। कितनी ही आँखों के अश्रु पोंछने पड़े हैं। (कारण, यह सब करना ही होगा साधुओं को। बिरजा-होम के समय उन्होंने जो अंगीकार घोषणा की है: जगत के सर्वभूतों को अभय प्रदान करता हूँ।—द्रष्टव्य:लीला-प्रसंग, द्वितीय खंड, साधक भाव, द्वादश संस्करण, पृष्ठ ३१७)।

इन नाना लोगों में साधु और ब्रह्मचारीगण हैं। भक्त हैं, जिनमें कोई पुरुष है, कोई नारी। कोई विवाहित है, कोई विवाहिता। कोई अविवाहित है, कोई अविवाहिता। वे सभी के सुख-दु:ख में, आनन्द-वेदना में शरीक हुए हैं। एक ही आधार में हुए हैं माँ-बाप, बन्धु-शिक्षक। साधु ब्रह्मचारियों के विषय में तो, बल्कि, उन्हें संघ गुरु होने के पूर्व भी चिन्ता करनी पड़ी है। पुरुष भक्तों के सम्बन्ध में भी सर खपाना पड़ा है, यद्यपि उसकी मात्रा निश्चय ही इतनी बड़ी नहीं थी अथवा इतनी व्यक्तिगत नहीं थी। किन्तु नारी और शिशुओं के विषय में? जीवन के प्रथम चौहत्तर वर्षों में उन्होंने कितनी नारियों अथवा शिशुओं के साथ बातें की हैं? और वे बातें भी तो थी निहायत ही सौजन्यमूलक।

चौहत्तर वर्ष की आयु में संघ-गुरु के आसन पर बैठते ही वे किस प्रकार हजार-हजार नारियों के अपने हो गये? हो गये किसी के पिता, किसी की माँ, किसी के बन्धु। किस प्रकार हजार-हजार शिशु उन्हें अपना ही एक जन मानने लगे थे? (अवश्य संघगुरु के आसन पर वे श्रीमाँ सारदादेवी की अंतिम सन्तान थे। माँ ने उनके माध्यम से अनेक खेल खेले हैं।) यहाँ उठाये गये इस विशेष प्रश्न का उत्तर, इस विशेष रहस्य की चाभी मिलेगी उपनिषद के एक मंत्र में; 'ते सर्वगं' सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानं सर्वमेवाविशन्ति।' धीर व्यक्ति सर्व-व्यापी को सभी दिशाओं में पाकर युक्तात्मा होकर सर्वत्र ही प्रवेश करते हैं। रवीन्द्रनाथ के मत से, यही है आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य। सर्वत्र प्रवेश करने की यह क्षमता ही अन्तिम क्षमता है। (द्रष्टव्य: 'शान्ति निकेतन' रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रथम खंड १३५६ बंगाब्द संस्करण में प्रकाशित, पृष्ठ ११)।

परमाणु विज्ञानी के पास जाने पर यह सुना जाता है कि इस मेज-कुर्सी से लेकर ब्रह्माण्ड तक चल रहा है अणु-परमाणु का नर्तन। साधु-संग करने पर, कम से कम, यह तात्त्विक धारणा आती है कि तृण से लेकर तारे तक सब कुछ—ईशावास्यमिदं सर्वं। 'जो सभी वस्तुओं को आत्मा में एवं सभी वस्तुओं में आत्मा को देखते हैं, वे इस दर्शन के फलस्वरूप किसी से भी घृणा नहीं करते।' (ईश/६, उपनिषत् ग्रंथावली, प्रथम खंड, स्वामी गंभीरानन्द, पंचम संस्करण, पृष्ठ ६)! और इसीलिए साधु जब कृषि करते हैं, तब वे केवल मिट्टी ही नहीं टटोलते। जिस समय गोशाला में काम करते हैं, उस समय केवल गाय ही नहीं देखते। जिस समय अस्पताल में काम करते हैं, उस समय वे केवल रोगी ही नहीं देखते। साधु जब सेवा-कार्य के लिए जाते हैं, तब केवल आर्त ही नहीं देखते। जब स्कूल-कॉलेज में पढ़ाते हैं, तब केवल कुछ बालक एवं तरुण ही नहीं देखते। बिल्डिंग या मंदिर बनाते समय केवल ईंट-काठ-पत्थर ही नहीं देखते।

मठ के प्राचीनतम साधु से लेकर नवीनतम ब्रह्मचारी तक सभी के लिए वे सोचते थे। किसकी क्या आवश्यता है, ध्यान रखते थे। इस ध्यान रखने के मामले में अनेकों को उन्होंने बहुत बार चौंका दिया है या यह कहना उचित होगा कि एक आनन्दमय विस्मय दिया है। उदार हाथ से दान करते थे वे। सेतु के नीचे जल की तरह उनके पास अर्थ अथवा सामग्री आती एवं जाती। मठ के एक प्राचीन साधु के अनुसार : मठ हमलोगों के लिए सर्वदा ही शिव का संसार रहा है। प्रभु महाराज के समय में ही यह था अन्नपूर्णा का संसार।

केवल बेलुड़-मठ ही नहीं। सभी केन्द्रों के विषय में थी उनकी चिन्ता। कोई भुवनेश्वर जा रहे हैं। आगे ही स्वामी ब्रह्मनन्द जी की जयन्ती है। तुरन्त उन्होंने धोती-चादर दी, जिससे जयन्ती के दिन महाराज को पहनायी जाय। लौट कर आने पर वहाँ के ठाकुर-घर एवं महाराज के घर के विषय में खोद-खोद कर पूछते। यद्यपि सभी जगहों के लिए उन्हें चिन्ता करनी पड़ती थी, तब भी ऐसा लगता है कि बेलुड़ के बाद उनके हृदय में मद्रास मठ और भुवनेश्वर मठ का एक विशेष स्थान था। मद्रास मठ में ही उन्होंने पहले पहल योगदान किया था और भुवनेश्वर में संन्यास प्राप्त किया था।

उनके दान-अवदान की बात हो रही थी। वस्तुएँ कितनी भी आएँ, पर कहाँ से आ रही हैं, किसके पास से आ रही हैं एवं किस लिए आ रही हैं—इस विषय में उनका विचार प्रखर था। अनेक वस्तुएँ वे ठाकुर के पास नहीं भेजते थे अथवा साधुओं को भी नहीं देते थे। उन सबकी दूसरी ही गति होती थी।

एक व्यक्ति, एक टोकरी अलफांसो आम लेकर बंबई से आये हैं।

प्रभु महाराज—कौन लाया है?

भक्त—मैं महाराज।

प्रभु महाराज—किसके लिए?

भक्त—महाराज, आपके एवं साधुओं के लिए।

साथ ही साथ सेवकों को निर्देश दिया प्रभु महाराज ने—वह आम ठाकुर के पास नहीं जायगा।

इसी तरह दूसरे एक क्षेत्र में भक्त बोले—ठाकुर के लिए लाया हूँ, महाराज।

इस बार प्रभु महाराज का निर्देश—गंगाजल से हाथ धोकर ठाकुर घर में ले जाओ।

इस प्रसंग में याद आया कि माँ की 'गंगा बाइ' की बात सुविदित है। माँ के किसी-किसी पुत्र में अगाध गंगा भक्ति देखी है। स्वामी माधवानन्द जी तो प्रायः सारे जीवन नित्य गंगा स्नान करते। यहाँ तक कि 'दुर्दान्त साहब' स्वामी निखिलानन्द—उनके साथ छोटे एक सुन्दर 'किट' में सर्वदा रहती एक छोटी सी गीता और एक छोटी शीशी गंगाजल। प्रभु महाराज बात-बात में गंगाजल लेते और लेने को कहते।

आचार्य रूप में उनकी कोमलता का, कठोरता का तथा कठोर-कोमल मिश्रित आचरण के तीन दृष्टांत।

(१) पहले, उनके औदार्य एवं कोमलता का

दृष्टांत। एक लड़की की आध्यात्मिक संभावना के विषय में महाराज को बहुत आशा थी। लड़की में भी आध्यात्मिक आग्रह था, यह सही है। किन्तु इसी के साथ उसमें ललित कला के प्रति भी काफी आकर्षण था। ऐसे में, शिल्पकला, साहित्य इत्यादि वैसे तो बहुत अच्छी चीजें हैं, किन्तु आध्यात्मिक आकर्षण की अपेक्षा उनका आकर्षण अधिक हो जाने पर आध्यात्मिक जीवन में विपद की आशंका हो जाती है। इस क्षेत्र में यही हुआ। आध्यात्मिक पथ से वह एकदम ही हट गयी।

कई वर्ष बाद वह मठ आयी। साथ थे उसके पति एवं शिशु संतान। मन में था भय महाराज उसे किस रूप में लेंगे। महाराज ने उसका आदर के साथ स्वागत किया। प्यार किया उसके शिशु को। उसे कुछ उपहार दिया। काफी समय तक उससे और उसके पति से बातें कीं। उसके अनुरोध पर अपने प्रयोग में लायी हुई एक चीज उसे दी। बहुत प्रसन्न होकर लड़की लौट गयी।

(२) इस बार दृष्टांत है उनकी कठोरता का। यह भी एक लड़की की बात है। उसने दीक्षा ली है। चिर कुमारी रह कर गंभीर रूप में आध्यात्मिक जीवन यापन में आग्रही है। गुरु के निर्देश पर ठीक तरह से आगे बढ़ रही है। ऐसे समय न जाने क्या हुआ। उसने एक ऐसा कार्य करने को सोचा जिससे उसके आध्यात्मिक जीवन का सर्वनाश अनिवार्य है। और इस क्षेत्र मे जो होता है— मनुष्य सोचता है कि वह जो समझ रहा है, वही ठीक है। तब भी उसमे सुकृति थी। आकर गुरु को सारी बातें बतायीं।

महाराज ने उसके प्रति कठोर व्यवहार किया। तीव्र भर्त्सना से जर्जरित होकर वह रो पड़ी। इस बार वह मठ के ही दूसरे एक पुराने साधु के पास गयी। वे भी उसके परिचित थे। वहाँ जाकर भी उसका वही रुदन। इसके साथ ही यह अभियोग कि गुरु ने उसके प्रति निष्ठुर व्यवहार किया है। वह जो करना चाहती है, उसमें कुछ भी अन्याय नहीं है। सभी उसे गलत समझ रहे हैं। इत्यादि-इत्यादि।

साधु ने उससे कहा—तुम केवल अपनी ही बात कहना चाहती हो, या मेरी बात भी सुनना चाहती हो?

—वाह रे, आपकी ही बात तो सुनना चाहती हूँ।

—मेरी बात है, गुरु तुम्हारी शर्त पर नहीं चलेंगे। तुम्हें चलना होगा गुरु की शर्त पर।

—तब मैं क्या करूँ?

—लौट जाओ गुरु के पास। वे जो कहें, उसी के अनुसार चलो। तुम्हें चाहे अच्छा लगे या नहीं।

लड़की लौट गयी प्रभु महाराज के पास। उनके निर्देश को ग्रहण किया एवं पालन किया। अपनी खोयी हुई विचार-विवेचना को पुनः पा लिया। आनन्द से बढ़ चली साधना के पथ पर। इस क्षेत्र में प्रभु महाराज ने अपनी कठोरता से एक शिष्या के आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की।

(३) इस बार दृष्टान्त है कठोर-कोमल के मिलित भाव का। एक तरुण ने साधु होने के लिए घर छोड़ दिया है। उसकी माँ आयी प्रभु महाराज के पास। रोना-धोना, क्रोध-नाराजी। इस बार महाराज कठोर हुए।

—यहाँ मैं यह सब सहन नहीं करूँगा। तुम यदि चाहो तो लड़के को लेकर अभी चली जाओ। किन्तु ध्यान रखना, उसका वैराग्य जागा है। यहाँ स्थान न पाने पर वह और कहीं चला जायगा। तुम उसकी खबर भी नहीं पाओगी। उसके लिए भी अनेक प्रकार के विपदों की आशंका है। तुम माँ होकर क्या उसे विपद के मुँह में ढकेल दोगी?

—तब क्या करूँ, बताइए?

—तुम कुछ दिन मठ में रहो। गेस्ट-हाउस में। इसके बाद स्वयं ही जो अच्छा समझो, करो। हमलोग कुछ नहीं बोलेंगे। महिला मठ में रहीं। मंदिर में जातीं। महाराज के पास नित्य आतीं। अन्त में एक दिन प्रणाम करके महाराज से बोलीं--मैं कल लौट जा रही हूँ। आप लोगों के पास कुछ दिन बहुत यत्न और आनन्द में बीत गये।

—लड़का ?

—लड़का तो आपलोगों का है महाराज ! आपलोगों के पास ही वह रहेगा। इससे अच्छा आश्रय, इससे सुन्दर जीवन वह कहाँ पायगा ? मैं उसे आशीर्वाद देकर जा रही हूँ। इसके बाद समय सुयोग होने पर एवं आप लोगों की अनुमति मिलने पर बीच-बीच में यहाँ आऊँगी। लड़के को देखने नहीं। ठाकुर को देखने। आप को देखने। अन्य साधुओं को देखने।

यहाँ एक अत्यंत गुरुत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रभु महाराज चाहते थे, प्रत्येक भक्त-परिवार मठ को कम से कम एक साधु उपहार में दे। उनकी इस इच्छा का संघ तथा भक्त-मंडली के कल्याण हेतु प्रबल भाव से प्रचार आवश्यक है।

मठ-मिशन की भावधारा के साथ ठीक-ठीक योग न रखने पर गुरु सम्बन्धी उच्छ्वास (भावावेग) विपथ-गामी होकर अनेक प्रकार के दिखावों को जन्म देता है और उससे जुड़े हुए भक्तों की एवं समग्र रूप में संघ की क्षति की आशंका होती है। इस विषय में वे अत्यंत सतर्क थे एवं उनका अनुशासन अत्यंत कठोर था। मठ की प्रथा: ठाकुर-माँ-स्वामीजी, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, श्रीबुद्धदेव, श्रीशंकराचार्य, श्रीगौरांग और ठाकुर के प्रत्यक्ष संन्यासी शिष्यों के अतिरिक्त अन्य किसी की जयन्ती नहीं मनायी जायगी। प्रभु महाराज इस प्रथा के सतर्क प्रहरी थे। वे चाहते थे कि संघ में तो हो ही, संघ के साथ युक्त भक्तगण भी निष्ठा के साथ इस प्रथा को मान्य करने में अविचलित रहें।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि अपने जन्म-दिन पालन के वे घोर विरोधी थे। उनके जीवित रहते यह दिन अत्यंत गोपनीय था। एक व्यक्ति यह दिन मनाते थे। महाराज ने उन्हें बुलवाया एवं शपथ दिलवायी कि वे इसे कभी प्रकाशित नहीं करेंगे।

एक आश्रम के नाम में ठाकुर के नाम के साथ एक संन्यासी साधु का नाम युक्त था। वे ठाकुर के प्रत्यक्ष शिष्य नहीं थे। उस आश्रम में ठाकुर की मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए अनुरोध किये जाने पर प्रभु महाराज ने कहा कि वे यह कार्य करेंगे, किन्तु इसके पूर्व उस आश्रम के नाम से श्रीरामकृष्ण के अतिरिक्त अन्य नाम का वर्जन करना होगा। यही हुआ था। एक मूल्यवान और तात्पर्यपूर्ण उदाहरण रूप में इस घटना का यहाँ उल्लेख किया गया।

मठ की प्रकाशित एवं प्रथासिद्ध उत्सव-तालिका में गुरु-पूर्णिमा का उल्लेख नहीं है। तब भी सब अपने-अपने दीक्षा-गुरु को इस दिन विशेष रूप से स्मरण कर सकते हैं, और ठाकुर तो सभी के गुरु महाराज हैं एवं मठ सभी का गुरु स्थान है; इस दिन सभी मठ में आकर ठाकुर को दर्शन प्रणाम कर सकते हैं—इस प्रकार दिन-यापन करने में प्रभु महाराज की सम्मति थी।

केवल रामकृष्ण मठ-मिशन ही नहीं। प्रभु महाराज वृहत्तर साधु समाज में परम श्रद्धा और प्रेम के आसन पर प्रतिष्ठित थे। सारदा-मठ की संन्यासिनी वृन्द माँ की इस सन्तान को कितनी मर्यादा देती हैं—वह बताने की वस्तु नहीं है। बुधवार १३ मार्च को सुबह वहाँ की माता जी प्रव्राजिका मोक्षप्राणा जी एवं महासचिव मुक्ति-प्राणा जी के साथ अनेक संन्यासिनियाँ एवं ब्रह्मचारिणियाँ बेलुड़ आयी थीं। अपराह्न में दुःसंवाद पाकर पहले जो लोग आये, उनमें थीं सारदा मठ की संन्यासिनियाँ। वे पुनः आयीं अंतिम कृत्य के दिन एवं भण्डारा के दिन (२५ मार्च १९८५) भी।

प्रभु महाराज ने रामकृष्ण वेदान्त मठ में ठाकुर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। उस मठ के दार्जिलिंग केन्द्र में भी वे गये थे। रामकृष्ण वेदान्त मठ के अध्यक्ष श्रीमत स्वामी प्रज्ञानानन्द जी महाराज प्रभु महाराज के अशेष प्रीतिभाजन रहे हैं। प्रभु महाराज की बात करते हुए श्रद्धा से आप्लावित हो जाते हैं प्रज्ञा महाराज। भण्डारा के दिन वे भी आये थे।

'हमारा प्रभु महाराज'—गहरे आवेग से बोले एक मण्डलेश्वर।

अंतिम कृत्य के पूर्व आम के नीचे प्रभु महाराज की पूत देह के पैरों के पास खड़े होकर हिन्दी भाषी एक साधु कर जोड़कर बारबार प्रणाम निवेदन करके कह रहे थे : साक्षात् (साक्षात) देवता थे, साक्षात् देवता थे।

विवेकानन्द केन्द्र (कन्याकुमारी) के प्रतिष्ठाता स्वर्गीय एकनाथ रानाडे विवेकानन्द शिला स्मारक निर्माण काल में प्रतिस्तर पर प्रभु महाराज का परामर्श ग्रहण करते थे और वहाँ स्वामीजी की मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए महाराज को ले गये थे।

श्रीश्री आनन्दमयी माँ अपने देहत्याग के कुछ समय पूर्व बेलुड़-मठ आकर प्रभु महाराज एवं पूजनीय भरत महाराज के साथ भेंट कर गयी थीं।

प्रभु महाराज का परिहास था आश्चर्यजनक एवं लक्ष्यभेदी। तीन दृष्टान्त।

एक॥ किसी व्यक्ति के एक विषय में उनका मंतव्य : (वह) मानो बेलुर मठ का रसम और मद्रास मठ का झोल (तरकारी का रसा) है।

दो॥ एक संस्था की ओर से कई लोग अक्सर आते हैं। सभी महाराज के स्नेह-भाजन एवं आशीर्वाद प्राप्त हैं। नाना विषयों में वे उनके निर्देश एवं सहायता के आकांक्षी हैं। महाराज चाहते हैं कि वे लोग अपने पैरों पर खड़े होकर रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ें। एक दिन उनलोगों से कहा (स्वामी जी से उद्धरण देकर) : अरे देखता हूँ तुम लोगों की वही दशा है—'ला दो, बैठे-बैठे मारूँ, तुम्हारे बाप के पुण्य से हिल भी नहीं सकता। (एने दाओ बोसे मारी, तोर बापेर पुन्ने नड़ते नारी।)

तीन॥ वृद्ध एवं अस्वस्थ साधुओं की चिकित्सा की देखरेख एक व्यक्ति करते थे। एकाएक थोड़े ही समय के अन्तराल में कई साधुओं का देहावसान हो गया। इसके बाद एक दिन वे (देखरेख करने वाले) गये प्रभु महाराज को प्रणाम करने। महाराज ने उनको देखते ही कहा : अरे, आओ आओ। तुम तो इस समय वी० आई० पी० हो, रामकृष्ण-लोक के वीसा ऑफिसर।

आध्यात्मिक साधना को गंभीर एवं आन्तरिक भाव से ग्रहण करके यथाशक्ति इस पथ पर जो चल रहे हैं एवं ठाकुर ने जिन्हें संसार में आबद्ध नहीं किया, ऐसे एक व्यक्ति की जिज्ञासा के उत्तर में प्रभु महाराज ने कई निर्देश दिये।

एक॥ जपध्यान में बहुत नियमानुवर्ती और यत्नशील होना होगा। अन्य कार्य कितना भी क्यों न किया जाय एवं वह कार्य कितना भी अच्छा क्यों न हो—प्रति-दिन अन्ततः (कम से कम) चार घण्टा जपध्यान जरूरी है।

दो॥ साधक के लिए अधिक सामाजिक जीवन ठीक नहीं है।

तीन॥ आहार-संयम बहुत जरूरी है। जितना नितान्त प्रयोजन है, उससे अधिक आहार ठीक नहीं है। प्रयोजन भी, मन का व्यापार है। मन का अनुमोदन न पाने पर शरीर अधिक की इच्छा नहीं करेगा।

चार॥ केवल कार्य से आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती। इसके लिए कार्य के बीच में जरूरी है 'निरन्तर एवं सचेतन' स्मरण-मनन (Constant and conscious rememberance.) इसके अभ्यास की आवश्यकता है।

पाँच॥ नाम-यश के प्रलोभन से अत्यंत सतर्कतापूर्वक दूर रहना होगा।

छः॥ ठाकुर के पास आ रहा हूँ, यह भाव मन में रख कर नियमित रूप से मठ में आना चाहिए। साधु-संग बहुत आवश्यक है। शास्त्र पाठ भी आवश्यक है। परंतु यह सब करना होगा सरसता के साथ, यांत्रिक रूप में नहीं, और क्रम से जिसे बढ़ाना होगा, वह पाठ नहीं, जप-ध्यान है।

सात॥ बीच-बीच में छुट्टी लेकर, एकान्त में जा-जाकर जपध्यान और शास्त्र-चर्चा करनी होगी। तो भी बहुत अधिक नहीं। नहीं तो आलस्य लग सकता है।

आठ॥ जितना भी कार्य अथवा सेवा का दायित्व तुम पर हो, यथाशक्ति करो। किंतु वह सब 'बाइ प्रोडक्ट' हैं। मूल लक्ष्य न भूलना। कहीं भी रहो, मन में रखो कि तुम ठाकुर के अपने हो। संसार के साथ तुम्हारा कोई भी लेना-देना नहीं है।

सभी के लिए साधारण रूप में सर्वावस्था में उनका समान निर्देश था—कथामृत पढ़ो क्षीर जप करो। Read the Gospel and do Japam.

वही बुधवार (१३ मार्च)। मठ के एक निर्जन कोने में चुपचाप बैठे-बैठे कब अपराह्न से संध्या हो गयी, पता ही नहीं चला। अब जरा मंदिर चलूँ। आरती का समय हो गया है। किन्तु यह क्या हुआ? भक्त नर-नारियों की बाढ़ सी आ गयी है। सभी शोकाहत किन्तु संयत हैं। आरती के समय मंदिर परिपूर्ण हो गया है। प्रभु महाराज के प्रति यह भी एक श्रद्धा-निवेदन है। संघ-गुरु लोग यही तो चाहते हैं कि कि सभी अवस्थाओं में ठाकुर को पकड़े रहें। आरती समाप्त हुई। उस समय बाढ़ की वृद्धि होती जा रही है। उसका वेग और आयतन बढ़ा इसके दूसरे दिन। प्रभु महाराज की पूत देह स्वामीजी के घर के आँगन में आम वृक्ष के नीचे पूर्ण मर्यादा से शायित है। उनको घेर कर घूम-घूम कर बह रहा है भक्तजनों का प्रवाह। उस तरफ शोक-संदेश आ रहा है—राष्ट्रपति का, विदेश से प्रधानमंत्री का, राज्पाल का, मुख्यमंत्री का। बढ़ रहा है फूलों का पहाड़। पहाड़ पर पहाड़।

प्रभु महाराज की ओर अपलक दृष्टि से देख रहे हैं एक व्यक्ति, पूजनीय भरत महाराज, आयु में जो प्रभु महाराज से भी बड़े हैं! वे आजकल नीचे नहीं उतरते। आज उतरे हैं। एक बार में इतनी देर तक नहीं बैठते। आज बैठे हैं, बरामदे की बेंच पर—घंटे पर घंटे शांत, निस्तब्ध, अकंपित।

प्रभु महाराज की देह जिस समय अग्नि को अर्पित हुई, उस समय मठ में पैर रखने की जगह नहीं। गंगा के वक्ष पर नौकाओं में भरे हैं भक्त नर-नारी। यह बाढ़ चलती रही भण्डारा के दिन तक। दिन पर दिन भक्तों की यह बाढ़ आश्चर्यमय रूप में सुशृंखल रही। नियंत्रण को वैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। पुलिस के एक बड़े अधिकारी गैर सरकारी रूप में आये थे। उन्होंने कहा: इतने मनुष्य और इतनी अनुशासनबद्धता एक साथ जीवन में कभी नहीं देखी।

सचमुच अकल्पनीय थी यह अनुशासनबद्धता। मनुष्य साधुत्व की कितनी श्रद्धा करता है, त्यागी को कितनी मर्यादा देता है, कितनी आकुलता के साथ प्रेम करता है पवित्र जीवन को—इसे और एक बार हमलोगों ने देखा, जाना।

दिन बीत रहे हैं। फिर बैठा हूँ मठ के एक कोने में। ठाकुर के मंदिर में नये ढंग से रंग हो रहा है। अध्यक्ष महाराज के निवास का संस्कार करके नवीन ढंग से सजाया जा रहा है। एकादश संघगुरु के रूप में वरित हुए हैं श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज। श्रावण की गंगा उमड़ रही हैं। आकाश में मेघों का मेला है। स्वामीजी के बगीचे में पक्षी यथारीति व्यस्त हैं। तृण-तृण में, वृक्ष-वृक्ष पर उज्ज्वल हरे रंग का समारोह है। वायु मधुमय है। मधुमय है यहाँ का सब कुछ।

बैठा हूँ रामकृष्ण लीलासागर के तीर पर। यहां कुछ भी खोता नहीं। कोई कहीं जाता नहीं। इस लीलासागर के साथ एक होकर हैं, और रहेंगे प्रभु महाराज। पहले के संघगुरु भी हैं। हमलोग, जिन्होंने जीवन का बड़ा भाग इसके तीर पर बिता दिया है, अस्तित्व का एक बड़ा अंश क्या जाकर वहाँ नहीं मिल गया है? अपने प्रिय साधुओं के साथ हमलोगों का इतना भी विच्छेद क्या हो सकता है? ध्यानगम्य होकर वे क्या हमलोगों के और भी समीप नहीं आ जाते? उनका आशीर्वाद और प्रेम क्या जीवन-मरण की तुच्छ सीमा को वहा कर हमारे अस्तित्व में सर्वदा क्रियाशील नहीं हैं? इस समय तो साधुओं की कृपा से रामकृष्ण लीलासागर के तट पर बैठे-बैठे नेत्र भर कर देखता हूँ, मन भर कर भोग करता हूँ—नित्य उत्सव। इसके पश्चात जिस दिन परम लग्न आयगा, उस दिन इस लीलासागर के सत चित् आन्दमय तरंग-तरंग में एकाकार हो जाऊँगा।

अहम् निर्विकल्पोच्च निराकाररूपो
विभूताम सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासङ्गतं नैव मुक्तिर्ण मेय—
स्चिदानन्दनरूप: शिवोऽहं शिवोऽहं॥

दुर्गापूजा का बदलता स्वरूप

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
बेलुड़ मठ

एक वर्ष बीत गया, और लो, आ गयी फिर दुर्गापूजा ! दुर्गापूजा यानी छुट्टियों का मजा, सैर का आनन्द, बोनस, नवीन वस्तुएँ तथा नूतन वस्त्र। साथ ही दुर्गापूजा का मतलब माइक की यंत्रणा, विद्युत का अपव्यय तथा चन्दे का जुल्म ! अधिकांश लोगों में आनन्द के बदले भय एवं आशंका की सृष्टि करता जा रहा है—यह पावन वार्षिकोत्सव। प्रतिवर्ष दुर्गापूजा का स्वरूप बदलता जा रहा है—धार्मिक उत्सव ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक उत्सव का रूप धारण कर लिया और अब धीरे-धीरे तमाशे का रूप धारण कर रहा है। और इसीलिए, दुर्गापूजा की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने के बावजूद, 'दुर्गतिनाशिनी' दुर्गा की पूजा करके भी हमारी दुर्गति की कोई सीमा नहीं दुर्भिक्ष, बाढ़ तथा महामारी से ग्रस्त होकर हम शोकातुर हैं। क्या हम यही चाहते हैं ? समय आ गया है जब विद्वान लोग समालोचना करें कि हम दुर्गापूजा को कौन-सा स्वरूप देना चाहते हैं ?

'कृतिवास' कृत बंगला रामायण के अनुसार भगवान रामचन्द्र ने रावण के बध के हेतु वासन्ती पूजा को वसन्त ऋतु में न कर शरत-ऋतु में 'अकाल-बोधन' कर देवी की पूजा की। दुर्गापूजा के मन्त्रों में भी है—

'रावणस्य विनाशाय रामस्यानुग्रहाय च अकाले बोधिता देवी'। भागवत के अनुसार सुरथ तथा समाधि ने वसंत काल में देवी का पूजा की थी।

यह तो हुई पौराणिक युग की बात। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतिमा में दुर्गापूजा लगभग एक हजार वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई है। मान्यता है कि नदिया (बंगाल) के महाराजा कृष्णचन्द्र ने अठारहवीं शताब्दी में इसे प्रारंभ किया। किन्तु स्मृतिकार रघुनन्दन (१५०० —१५७५) द्वारा रचित 'दुर्गापूजातत्व', मैथिल पंडित वाचस्पति मिश्र (१४२५—१४९०) द्वारा रचित 'वासन्तीपूजा प्रकरण', प्रख्यात मैथिली कवि विद्यापति (१३७५--१४५०) द्वारा रचित 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' आदि ग्रन्थों से यह मान्यता गलत सिद्ध होती है। सम्राट अकबर के शासनकाल में राजशाही (बंगाल) के राजा कंस नारायण ने सन् १८५० में नौ लाख रुपयों का व्यय कर प्रतिमा में दुर्गापूजा की थी। उसी के बाद बंगाल में दुर्गापूजन का चलन बढ़ता गया।

सम्पूर्ण देश में प्रचलित दुर्गापूजा का आधुनिक स्वरूप संभवतः कलकत्ता शहर की देन है। कलकत्ते में सर्वप्रथम बड़ी दुर्गापूजा १७५७ ई० में पलासी युद्ध के बाद शोभा बाजार राजबाड़ी में राजा नवकृष्ण के द्वारा आयोजित हुई थी, जो लॉर्ड क्लाइव के मुन्शी के रूप में कार्यरत थे। लॉर्ड क्लाइव ने भी इस पूजा में भाग लिया था।

मनोरंजन, प्रदर्शनी, सांस्कृतिक कार्यक्रम इसके अंतिम अंग बन गये और पूजा गौण हो गयी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर उच्छृंखलता बढ़ती गयी, भक्ति संगीत का स्थान सिनेमा के गानों तथा पॉप संगीत (Pop Music) ने ले लिया। अधिकाधिक खर्च डेकोरेशन, पण्डाल, सजावट, माइक, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि में होने लगा। इस वर्ष केवल कलकता शहर में १०४८ सार्वजनिक पूजाएँ हो रही हैं जिनका कुल खर्च एक करोड़ रुपयों से भी अधिक है। इनमें से १५ पूजाओं का निजी बजट एक लाख रुपयों से अधिक है। स्वाभाविक ही इतनी अधिक धनराशि जुटाने के लिए चन्दा एकत्रित करने की विधि में भी परिवर्तन होता आ रहा है। पहले लोग सहर्ष इच्छा पूर्वक चन्दा देते थे, फिर अनिच्छापूर्वक देने लगे और अब भय तथा आतंक से देते हैं। पहले पूजा का स्वरूप सात्त्विक था, माँ की सुन्दर प्रतिमा, विधिवत पूजा, भक्ति संगीत, स्नेहमय वातावरण तथा परिशुद्ध सात्त्विक आनन्द ही उसके मुख्य अंग थे। फिर पूजा का स्वरूप राजसिक हो गया, पूजा गौण हो गयी। साज सजावट तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम मुख्य अंग हो

गये। उसने एक सामाजिक उत्सव का रूप ले लिया। और अब तो जिस रूप में हम अधिकांश पूजाएँ देख रहे हैं उन्हें तामसिक कहने में अतिशयोक्ति न होगी।

विधिहीन पूजा (और कहीं-कहीं तो कैसेट द्वारा श्लोक उच्चारण !) मनोरंजन के नाम पर देवी के सामने ही वीभत्स नाच-गान तथा चन्दे के नाम पर डकैती ! धर्म के नाम पर हो रहे इस अधर्म के आचरण को क्या माँ सहन करेगी ?

देश में हाहाकार मचा हुआ है, दुर्भिक्ष तथा महामारी से लोग संतप्त हैं। अब भी समय है, हमलोग चेतें, जगन्माता की, दुर्गति नाशिनी दुर्गा की सात्विक, भक्ति पूर्ण उपासना कर उन्हें प्रसन्न करें। उनके प्रसन्न होने पर लक्ष्मी (धन) सरस्वती (ज्ञान), गणेश (सिद्धि) तथा कार्तिक (शक्ति) स्वमेव चले आयेंगे। अधर्म रूपी, पाप रूपी, वासनारूपी महिषासुर का वध होगा तथा चारो ओर शांति का साम्राज्य स्थापित होगा। आइए, हम भी देवतागणों के साथ माँ की स्तुति करें—

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरि भीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्य वासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥
(दुर्गासप्तशती, अ०-११, श्लो०-३४.३५)

"देवि ! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ। सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो। विश्व की पीड़ा दूर करनेवाली देवि ! हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोक निवासियों की पूजनीया परमेश्वरि ! सब लोगों को वरदान दो।

हनुमज्जयन्ती के अवसर पर

स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान

—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

बचपन से ही स्वामी विवेकानन्द के हृदय में भगवान राम और उनके अनन्य पार्षद श्रीहनुमान के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। उनकी माँ श्रीमती भुवनेश्वरी देवी उन्हें प्रतिदिन रामायण तथा महाभारत की कथाएँ सुनाया करतीं। इनमें अत्यन्त रुचि होने के कारण बालक नरेन्द्र ने छह वर्ष के अल्प वय में ही रामायण की पूरी कथा कण्ठस्थ कर ली थी। मुहल्ले में कहीं भी रामायण की कथा होती या रामलीला का आयोजन होता, तो खेल-कूद को तिलाँजलि दे वह निश्चित समय पर वहाँ पहुँच जाता। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक गायक राम-चरित गाते गाते बीच में अटक गया। वह एक अंश भूल गया था। बालक नरेन्द्र ने झट उसे उस अंश का स्मरण करा दिया। जब भी वह रामायण की कथा सुनने जाता, तो बीच में इधर-उधर निगाह फेरकर देख लिया करता कि भक्तराज हनुमान अपने कथनानुसार रामकथा सुनने वहाँ उपस्थित हुए हैं या नहीं। एक दिन कथावाचक महोदय ने बताया कि हनुमानजी कदलीवन में निवास करते हैं। यह सुन बालक नरेन्द्र के हृदय में हनुमानजी से मिलने की इच्छा तीव्र हो गयी। घर के पास ही केले का एक बगीचा था। वह अँधेरे में वहाँ चला गया और केले के एक पेड़ के नीचे बैठकर हनुमानजी के आने की बाट जोहने लगा। रात हो जाने पर भी वह

घर नहीं लौटा। घर के लोगों को उस रात उसे ढूँढने में जो परेशानी हुई होगी, उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन की कुछ घटनाओं का हनुमानजी के जीवन की घटनाओं से बहुत साम्य है। जैसे हनुमानजी अपने स्वामी भगवान श्रीरामचन्द्र का सन्देश और मुद्रिका लेकर समुद्र-पार लंका गये थे, ठीक वैसे ही स्वामी विवेकानन्द अपने गुरुदेव भगवान श्रीरामकृष्ण का संदेश लेकर समुद्र-पार अमेरिका गये थे। हनुमानजी के लंका जाने का उद्देश्य था जगज्जननी सीता को स्वतंत्र कराना और भगवान श्रीरामचन्द्र की महिमा को फैलाना। दूसरी तरफ स्वामी विवेकानन्दजी के अमेरिका एवं यूरोप जाने का उद्देश्य था—भारतमाता को पराधीनता के रावण के हाथों से स्वतंत्र कराना और हिन्दू धर्म की महिमा को सारे विश्व में प्रतिष्ठित करना। तभी तो श्रीरामकृष्णदेव के गृही शिष्य नागमहाशय उन्हें साक्षात् महावीर कहकर सम्मानित किया करते थे।

स्वामीजी ने पश्चिम की अपनी द्वितीय यात्रा का वृत्तान्त लिखा था। मद्रास से जब वे जहाज में बैठकर लंका की ओर चलते हैं, तो उन्हें हनुमानजी की स्मृति हो आती है, जिन्होंने युगों पूर्व इसी समुद्र को पार किया था। वे अपनी डायरी में लिखते हैं—"...उन्होंने सौ योजन समुद्र एक ही छलाँग में पार किया था और हम लोग काठ के कोठे में बन्द, उथल-पुथल करते हुए, थुन्नियाँ पकड़कर स्थिरता कायम करते हुए समुद्र पार करते हैं। लेकिन एक मर्दानगी जरूरी है...उन्होंने लंका पहुँचकर राक्षस और राक्षसियों के चन्द्रानन देखे थे और हम लोग राक्षस-राक्षसियों के दल के साथ जा रहे हैं!"

अमेरिका में रहते समय जब वे अपने पश्चिमी शिष्यों और मित्रों को भक्तियोग का उपदेश देते, तो इष्टनिष्ठा और एकाग्रता के आदर्श के रूप में वे बहुधा हनुमानजी का उदाहरण दिया करते। कुछ स्थल प्रस्तुत हैं—

भक्तश्रेष्ठ हनुमान से एक बार पूछा गया था—"आज महीने की कौन सी तिथि है?" उन्होंने उत्तर दिया था, "राम ही मेरे संवत्, तिथि आदि सब कुछ हैं। और कोई तिथि नहीं जानता।"

इष्टनिष्ठा का भाव प्रकट करने के लिए एक अत्यन्त काव्यात्मक और सशक्त उदाहरण है, और इतनी सुन्दर उपमा शायद ही पहले कभी दी गयी है। साधक के लिए आरम्भिक दशा में यह एकनिष्ठा अत्यन्त आवश्यक है। हनुमानजी के समान उसे भी यह भाव रखना चाहिए—"यद्यपि परमात्मदृष्टि से लक्ष्मीपति और सीतापति दोनों एक हैं, तथापि मेरे सर्वस्व तो वे ही कमललोचन श्रीराम हैं।"

अमेरिका के पैसाडेना नामक स्थान पर स्वामीजी ने 'रामायण' पर एक सुन्दर व्याख्यान दिया था, जिसमें वे हनुमानजी का वर्णन इस प्रकार करते हैं—"दीर्घकाल तक वन-वन भटकने के पश्चात् उनकी (भगवान श्रीरामजी की) एक 'वानर-यूथ' से भेंट हुई। इन्हीं वानरों में देवांजसम्भूत हनुमान थे। कालान्तर में ये ही वानरश्रेष्ठ हनुमान राम के अनन्य सेवक बन गये और उन्होंने सीता के उद्धार में राम की विशेष सहायता की। राम के प्रति हनुमान की भक्ति एवं श्रद्धा इतनी अनन्य थी कि आज भी हिन्दू उन्हें परम गहन सेवा-धर्म के आदर्श और प्रभु के अप्रतिम सेवक की भाँति पूजते हैं।"

एक बार स्वामीजी ने वार्तालाप के दौरान कहा था—"अनुमान करो कि कोई हनुमान की भक्तिभावना से ईश्वर की साधना कर रहा है और हनुमान का जैसा भगवान पर भक्तिभाव था, वैसे ही यह भाव गाढ़ा होगा, उस साधक की चाल-ढाल, यहाँ तक कि शरीर की गठन भी तद्रूप होती जायगी।"

अमेरिका से लौटने के पश्चात् जब स्वामीजी रामेश्वरम् के रामनाद में थे, तब एक सम्भाषण के दौरान उन्होंने रामायण के पात्रों का एक रूपक प्रस्तुत किया था, जिसमें राम परमात्मा, सीता जीवात्मा, और प्रत्येक स्त्री या पुरुष का शरीर लंका है। जीवात्मा जो कि शरीर में बद्ध है या लंकाद्वीप में बन्दी है, सदा श्री राम से मिलना चाहती है। लेकिन राक्षस यह होने नहीं देते। विभीषण

हैं सत्वगुण; रावण रजोगुण; कुम्भकर्ण तमोगुण। ये गुण शरीररूपी लंका में बन्दिनी सीता को यानी जीवात्मा को परमात्मा श्रीराम से मिलने नहीं देते। बन्दिनी सीता जब अपने स्वामी से मिलने के लिए आतुर होती हैं, तो उन्हें गुरुरूपी हनुमान मिलते हैं जो ब्रह्मज्ञान रूपी मुद्रिका उन्हें दिखलाते हैं और उसको पाते ही सीता के सब भ्रम नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सीता श्रीराम से मिलने का मार्ग पाती हैं या दूसरे शब्दों में जीवात्मा परमात्मा से एकाकार हो जाती है।

उपर्युक्त रूपक में स्वामीजी ने हनुमानजी को गुरु का उच्च आसन दिया है, जो जीवात्मा का परमात्मा से योग कराने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करते हैं।

युगों से भारतीय नसों में सत्वगुण प्रवाहित होता रहा था। किन्तु विगत कुछ शताब्दियों से विदेशियों की गुलामी में जीवन बिताते बिताते कालचक्र की अधोगति के कारण भारतीय जनजीवन घोर तमोगुण से आच्छन्न हो गया है। शरीरिक दुर्बलता और कर्म में अरुचि, यही तमोगुण का लक्षण है। कर्महीनता के कारण हमारी प्रगति के द्वार अवरुद्ध हैं। स्वामीजी कहते हैं, "अब देश को उठाने के लिएमहावीर की पूजा चलानी होगी, शक्ति की पूजा चलानी होगी। तभी तुम्हारा और देश का कल्याण होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं।"

बेलुड़ मठ में उनके एक शिष्य श्री शरत्चन्द्र चक्रवर्ती ने जब उनसे प्रश्न किया "हमारे लिए इससमय किस आदर्श को ग्रहण करना उचित है?"—तब उत्तर में स्वामीजी ने हनुमानजी के महान् चरित्र को अपनाने का जिन शब्दों में समर्थन किया वे बड़े ही ममस्पर्शी हैं। उन्होने कहा था, "महावीर के चरित्र को ही इस समय आदर्श मानना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये! जीवन-मृत्यु की परवाह कहाँ? महाजितेन्द्रिय, महाबुद्धिमान् दास्य भाव के उस महान् आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गठित करना होगा। वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं ही हो जायेगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा—यही है सफलता का रहस्य। 'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय'—अवलम्बन करने योग्य और दूसरा पथ नहीं। एक ओर हनुमानजी के जैसा सेवाभाव और दूसरी उसी प्रकार त्रैलोक्य को भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम! राम के हित के लिए जीवन तक विसर्जित कर देने में कभी जरा भी संकोच नहीं किया। राम की सेवा के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों के प्रति उपेक्षा, यहाँ तक कि ब्रह्मत्व, शिवत्व प्राप्ति के भी प्रति उपेक्षा। केवल रघुनाथ के उपदेश का पालन ही जीवन का एकमात्र व्रत— उसी प्रकार एकनिष्ठ होना चाहिए।"

स्वामीजी के इन महान् शब्दों का प्रत्येक भारत वासी को, विशेषकर नवयुवकों को, सदा स्मरण करना चाहिए और साथ ही इन शब्दों का भी—"महावीर का स्मरण किया कर····देखेगा, सब दुर्बलता, सारी कापुरुषता उसी समय चली जायगी।"

लेखक का अपना विचार है कि प्रत्येक विद्यालय में हनुमान का एक मन्दिर और एक आधुनिक व्यायाम-शाला हो। सुदृढ़ शरीर का निर्माण भी शिक्षा का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाय। तभी श्री हनुमानजी द्वारा अपने जीवन से प्रदर्शित और प्रतिष्ठित ब्रह्मचर्य, बल, सेवा, त्याग, भक्ति, आज्ञापालन आदि आदर्शों का बाल एवं युवा-वर्ग में प्रचार होगा, और भारत अपने खोये हुए वैभव को पुनः प्राप्त कर सकेगा।

(विवेक ज्योति के सौजन्य से)

पावापुरी की तीर्थ यात्रा

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

जैन धर्मावलम्बियों का महान तीर्थ एवं चौवीसवें (अन्तिम) तीर्थंकर भगवान महावीर की निर्वाण-स्थली पावापुरी की मेरी यात्रा में काफी विलम्ब हो गया था। ६ नवम्बर को जब मैं वहाँ पहुँचा तो शरद ऋतु का आगमन हो चुका था। पावापुरी बिहार का एक गाँव है जो पटना से दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर ५९ मील की दूरी पर तथा गया से उत्तर-पूर्व दिशा की ओर ४५ मील की दूरी पर अवस्थित है। यह अपने निकटतम शहर बिहारशरीफ से ९ मील दक्षिण बख्तियारपुर-राँची राष्ट्रीय उच्च-मार्ग के किनारे है।

कमल-सरोवर के पश्चिमी और उत्तरी किनारे पर से होते हुए तथा फिर गाँवों के मध्य से गुजरते हुए हमलोगों की जीप समवसरण नामक स्थान पर पहुँची। यहाँ दो मन्दिर एवं यात्रियों को ठहरने के लिए धर्मशालाएँ हैं। यह स्थान मुख्य दर्शनीय स्थल-जल मन्दिर से १ मील पूर्व है। इसके पश्चिम और दक्षिणी भाग से होते हुए एक वन-मार्ग घोषरावा गाँव की ओर चला जाता है। धर्मशाला की द्वितीय मंजिल के दक्षिण-पूर्व कोने पर एक नवनिर्मित कमरे में मेरे ठहरने का प्रवन्ध किया गया। कमरे में विद्युतीकरण अभीतक नहीं हुआ था। दो काष्ठ निर्मित चारपाइयाँ, एक गद्दा और एक तकिया को छोड़कर कमरा अन्य साज-समान से रहित ही था। यद्यपि बिजली के तार दिखाई पड़ते हैं लेकिन पावापुरी में विद्युत-आपूर्ति नहीं है। परन्तु धर्मशालाओं में निजी जेनरेटर है जिसे रात्रि के प्रथम दो तीन घंटों के लिए चलाया जाता है। गोधूलि के ठीक बाद मेरे कमरे के नीचे जेनरेटर चलाया गया जिसके चलते जोरों की आवाज होने लगी, साथ ही कमरे में कम्पन होने लगा। मात्र इस अवांछित हरकत को छोड़कर कमरा अन्य सभी मामलों में अच्छा था। कमरे में तीन ओर से खिड़कियाँ थीं। पूरब की खिड़की से झाँकने पर आम, पपीते, केले और अन्य वृक्षों से भरे बगीचे के पार दूर-दूर तक धान के खेत दिखाई पड़ते हैं। उगते हुए सूर्य का सुनहला ज्योतिर्मण्डल प्रतिदिन दृष्टिगोचर होता था। दक्षिण-पश्चिम दिशा में राजगीर की पहाड़ियाँ हैं जो १०० फीट की दूरी पर बने एक द्वि-मंजिले मकान के कारण दिखाई नहीं पड़ती थीं।

धर्मशाला इतना शान्त है कि इसमें कहीं भी थोड़ी-सी ध्वनि होने पर ऐसा लगता है कि वह ध्वनि पास के बरामदे पर ही उत्पन्न हुई हो। रात्रि में पटना-राँची मार्ग पर चलती गाड़ियों की गड़गड़ाहट स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। फिर भी मेरा कमरा ऐसे स्थल पर था कि तीर्थयात्रियों एवं दर्शनार्थियों के दिनभर के आवागमन से तथा धर्मशाला की देखरेख करने वाले कर्मचारियों की चिल्लाहटों से मैं शायद ही परेशान होता था। निर्माणाधीन मन्दिर के लिए संगमरमर-शिला को काटने से उत्पन्न टिक्-टिक् की ध्वनि होती थी। जब मैं इस ध्वनि से अभ्यस्त हो गया तो मुझे इससे कोई दिक्कत नहीं होती थी। मुझे लालटेन, एक बाल्टी और एक गिलास दिये गये। नल-कूप से नहाने एवं पीने हेतु प्रचुर स्वच्छ जल प्राप्त होता था।

जैन-शाकाहारावाद

धर्मपरायण जैन सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करते हैं। यहाँ ठहरने वाले हर व्यक्ति को इस नियम का पालन करना पड़ता है। अतएव ५ बजे संध्या में श्री

मान् 'क' (धर्मशाला-प्रभारी) ने अपने साथ भोजन करने के लिए मुझे बुलाया। 'क' एक धार्मिक जैन हैं जो शुद्ध शाकाहारी भोजन करते हैं, और सूर्यास्त के बाद पानी तक भी नहीं पीते हैं। वे 'प्रति-क्रमण' नामक आध्यात्मिक साधना प्रतिदिन सुबह-शाम करते हैं तथा चान्द्रमास की ८वीं एवं १४वीं तिथि को उपवास भी रखते हैं। मैं यह जानकर आश्चर्यचकित हो गया कि वे पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान जिले के निवासी हैं। बाद में हम लोग बंगला भाषा में बातचीत करने लगे। वे गुजराती और हिन्दी भी बेधड़क बोल सकते थे। मेरे इस अनुमान के विपरीत कि सामिषजन- बाहुल्य बंगाल प्रान्त में जैनियों की संख्या बहुत कम होगी। उन्होंने बताया कि इसके कई जिलों में जैनियों की अच्छी खासी संख्या है।

मुश्किल से दो थालियाँ रखी जा सकने वाले डाइनिंग टेबुल के नजदीक चल रही वार्त्ता का प्रवाह भोजन-संबंधी प्रश्नों की ओर उन्मुख हुआ। कुछ तो इसलिए कि प्रभारी महोदय भोजन सम्बन्धी मेरी आदतों के बारे में जानना चाहते थे तथा कुछ इसलिए भी कि जैन मतावलम्बी भोजन के सम्बन्ध में विशेष रूप से मर्यादा पालन करने वाले होते हैं। श्रीमान् 'क' यह जानकर संतुष्ट हुए कि रामकृष्ण संघ के सामिष बाहुल्य संन्यासियों के मध्य मैं निरामिषभोजी हूँ। उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दूधर्म के 'मुझे मत छुओ' वाद की तरह अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्त की शाखा के रूप में 'शाकाहार' जैन धर्मावलम्बियों के बीच एक मानसिक विकार है। 'क' अब यह जानना चाहते थे कि संन्यासियों को मांसाहारी होना उचित है कि नहीं और क्या स्वामी विवेकानन्द ने इसकी अनुमति दी थी ? संयोग से मेरे पास स्वामीजी की कुछ पुस्तकें थीं। मैंने उन्हें पुस्तक के कुछ प्रासंगिक अंशों को दिखलाया जहाँ स्वामीजी ने मांसाहार के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। लेकिन 'क' महोदय इसके बाद भी मानने को तैयार नहीं थे। वे पूछते गये कि मैं आलू और प्याज खाता कि नहीं ? अन्त में मैंने इस झिड़क के साथ बातचीत समाप्त कर दी कि आपके धर्म का स्वरूप कुछ नियमों तथा उपवासों तक ही सिमट कर रह गया है। परमार्थ चिंतन को छोड़कर आपलोग केवल 'क्या खायें, क्या नहीं खायें— इसी पर सोचते रहते हैं और यदि आलू और प्याज खा लेते हैं तो सोचते हैं कि मेरा धर्म नष्ट हो गया।' इसके बाद मेरे निवास के दौरान केवल एक ही बार शाकाहार के सम्बन्ध में फिर प्रश्न उठा और उस अवसर पर मैंने यह बताने की चेष्टा की कि संपन्न जैनधर्मावलम्बी किस तरह गरीबों का शोषण करते हैं। 'क' महोदय अन्य जैनियों की तरह कीड़े-मकोड़े की हत्या को तो क्रूरता समझते हैं लेकिन धन-संग्रह में मानवों के प्रति अधिक क्रूरता पूर्ण व्यवहार को देख नहीं पाते हैं।

खाना खाने के बाद 'क' अपनी थाली और प्याले को पानी से धोकर पी गये ताकि उसमें अन्न का कोई टुकड़ा भी छूटने न पावे। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि इस प्रकार की प्रशंसनीय आदत सभी संस्कृत जैनियों के बीच है।

मैं शीघ्र ही वहाँ की दिनचर्या से अवगत हो गया जिसके अनुसार अन्य कार्यों के अलावा जलपान के बाद जल-मन्दिर जाना, वहाँ से दोपहर में भोजन के पहले लौटना तथा बाकी समय समवसरण में बिताना था। समवसरण का मुख्य द्वार सूर्यास्त के बाद बन्द कर दिया जाता था। अतएव एक बार को छोड़कर, जब मैं जल-मन्दिर संध्यारति देखने गया था, कभी भी गोधूलि के बाद मैं बाहर नहीं गया। प्रातः कालीन भ्रमण के दौरान मुझे विभिन्न मन्दिरों को देखने का अवसर मिलता था।

जल-मन्दिर :

पावापुरी में कुल छः मन्दिर हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण, पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर कमल-सरोवर के बीच में संगमरमर से बना स्मृति मन्दिर है, जहाँ भगवान महावीर का पूतः शरीर अग्नि को समर्पित किया गया था। चूँकि यह स्मृति मन्दिर सरोवर के मध्य स्थित है, अतएव इसे जल-मन्दिर कहा जाता है। यह सरोवर

१४०० फीट लम्बा और १२०० फीट चौड़ा है तथा लगभग सालों भर कमल पुष्प से भरा रहता है। इस वर्ष अधिक कमल नहीं खिले हुए थे लेकिन जल-पक्षियों की संख्या बहुत थी।

६०० फीट लम्बा और १० फीट चौड़ा एक पुल सरोवर के किनारे पर बने एक भव्य द्वार एवं सरोवर के मध्य बने संगमरमर-चबूतरे को जोड़ता है। चबूतरा १२० × १२० फीट के आकार का है जिसके चारों ओर संगमरमर की रेलिंग, चारों कोने पर छोटे-छोटे गुम्बद तथा पूरब में जल में उतरने हेतु सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस चबूतरे के बीच में एक उठा हुआ प्लेटफार्म है, जिस पर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर पूर्व की ओर है। तीन ओर से छोटे-छोटे प्रवेश द्वार भी हैं। गर्भगृह में तीन बड़े-बड़े ताखे (Niches) बने हुए हैं। मध्यवर्ती ताखे पर भगवान महावीर का १८ सेन्टीमीटर लम्बा पद्चिन्ह एक काले पत्थर पर अंकित हैं। किनारे काले ताखे पर उनके प्रथम उत्तराधिकारी गौतम एवं पंचम उत्तराधिकारी सुधर्म के पद्चिह्न संगमरमर शिला पर अंकित हैं। चारों कोने पर बने गुम्बदोंमें उनके प्रधान प्रधान संदेशवाहकों, संन्यासियों तथा अन्य साधुओं-आचार्यों के पद्-चिन्ह अंकित हैं। अंग-प्रत्यंग सहित इस मन्दिर की बनावट ऐसी है कि यह पुराणों में वर्णित 'दिव्य विमान' की तरह दिखाई पड़े। तीर्थयात्रियों तथा पर्यटकों को ७ बजे प्रात: से ७ बजे संध्या तक मन्दिर के अन्दर पूजा करने दी जाती है।

जल मन्दिर वास्तव में एक असामान्य स्थान है। मनोहारी दृश्य तथा शिल्प-सौन्दर्य तो है ही, साथ ही इसके अन्दर गम्भीर शांति विराजती है। यही कारण है कि इसमें प्रवेश करते ही मन शान्त और अन्तर्मुखी हो जाता है। यहाँ मन को बलपूर्वक नियंत्रण न कर स्वाभाविक रूप से यहाँ की शान्ति एवं पवित्रता को अन्दर प्रशेश करने देना चाहिए।

पौराणिक कथानुसार भगवान महावीर ने अपने जीवन का चातुर्मास यहीं किया था। कार्तिक कृष्णपक्ष की १४वीं तिथि को प्रात: काल उनका अन्तिम उपदेश प्रदान करना शुरूहुआ। यह जानकर कि उनकी मृत्यु निकट है, उन्होंने अनवरत ४८ घंटों तक उपदेश देकर अपनो नश्वर देह का त्याग कर दिया। वह अमावस्या की अंतिम घड़ी थी और उस समय स्वाति नक्षत्र आरोहन की स्थिति में था। इस अन्तिम उपदेश को 'उत्तरध्यान-सूत्र' के नाम से अभिहित किया जाता है। महानिर्वाण के समय देवताओं ने पुष्प वृष्टि की और प्रशंसा के गीत गाये। भक्तमण्डली-गृही और त्यागी-दु:ख से कातर हो रहे थे। जिस ज्ञान दीप को भगवान ने जलाये रखा था, वह बुझ गया। इस कमी को पूरा करने के लिए भक्तों ने अगनित दीपों को जलाया। जैनियों के अनुसार यहीं से दीपावली पर्व की शुरुआत हुई।

जैसे ही भगवान महावीर के देह-त्याग को खबर फैली, लोग उनके पार्थिव शरीर के अंतिम दर्शन हेतु उमड़ पड़े। उनके पूत: शरीर को एक शोभा-यात्रा में दाह-स्थान तक ले जाया गया। अग्नि संस्कार के पश्चात् देवतागण और भक्तगण अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार उनके भस्मावशेष को कलशों में भर भरकर पूजार्थ ले गये। जब सारा का सारा भस्मावशेष खत्म हो गया तो लोगों ने उस स्थान की मिट्टी को भी खोद-खोदकर ले जाना प्रारंभ कर दिया, जिसके फलस्वरूप एक खाई बन गयी। इसी खाई को बाद में सरोवर के रूप में परिवर्त्तित कर दिया गया। भगवान के बड़े भाई राजा नन्दवर्द्धन ने उनके निर्वाण स्थल एवं समाधि-स्थल पर उनके पद्-चिन्हों को स्थापित किया, जहाँ क्रमश: गाँव मन्दिर और जल मन्दिर है।

ऐतिहासिक रूप से उपर्युक्त घटनाओं को प्रमाणित करना मुश्किल है क्योंकि सबसे पुराने १२०३ ई० के शिला लेख में अभयदेव सुरी द्वारा स्थापित सिर्फ एक धातु मूर्ति का ही उल्लेख है। फिर भी, जल-मन्दिर के अन्दर घिसा-पिटा मध्यवर्ती पद्-चिन्ह इस बात की पुष्टि करता है कि यह बहुत पुराना है। अन्य दो चिह्न नि:सन्देह परवर्ती कालीन हैं।

गाँव मन्दिर :

गाँव मन्दिर गाँव की उत्तर-पश्चिम दिशा में है और यह धर्मशालाओं से घिर हुआ है। इस मन्दिर से संलग्न गुम्बद सहित एक विशाल नाट्य-मन्दिर माउण्ट आबू स्थित दिलवारा जैन मन्दिर की याद दिलाता है। प्रवेश स्तम्भों पर सुन्दर खुदाई की गयी है। भगवान एवं अन्य दो तीर्थंकरों की मूर्ति के अलावा ऊँचे काले संगमरमर के चबूतरे पर भगवान के पद्-चिह्न भी अंकित हैं। शिला लेख के अनुसार वे १५८८ ई० में जीर्णोद्धार के समय स्थापित किये गये थे। राजा नन्द-वर्द्धन द्वारा स्थापित मूल पद्-चिह्न अब उसी मन्दिर के एक कोने में रखा पड़ा है।

दीपावली की रात्रि में भगवान महावीर के निर्वाण दिवस की स्मृति में एक महोत्सव का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश भर के जैन-धर्मावलम्बी भाग लेते हैं। वे जल मन्दिर में लड्डू चढ़ाते हैं। कोई-कोई लड्डू तो १५ किलोग्राम वजन तक का होता है। उत्सव के दौरान शोभा-यात्रा भी निकाली जाती है एवं भगवान महावीर के निर्वाण सम्बन्धी दुःखभरे भजन गाये जाते हैं। गरीबों एवं अपंगों को खिलाया जाता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय वालों का ऐसा भी विश्वास है कि भगवान महावीर ने अपना प्रथम उपदेश ५५६ ई० पू० पावापुरी में ही देकर ४४०० विद्वानों, राजकुमारी चन्दनवाला तथा अपने ११ संदेशवाहकों को जैन धर्म में दीक्षित किया था। उनके संदेशवाहक गांधार कहलाते थे जिनमें इन्द्रभूति गौतम अग्रगण्य थे। भगवान ने धर्मतीर्थ चतुरविधा संघ चलाया जिसमें संन्यासी, संन्यासिनी, श्रावक—पुरुष गृहीभक्त, श्राविका—स्त्री गृहीभक्त आते थे। गौतम एक वैदिक विद्वान एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। वे अपने अनुयायियों के साथ महावीर को चुनौती देने आते, परन्तु विना किसी शास्त्रार्थ के उनके अनुगत हो गये। महावीर के बाद गौतम ही उत्तराधिकारी बने। भगवान के कुछ उपदेश गौतम के प्रश्न के उत्तर स्वरूप ही हैं। यह भी कहा जाता है कि कई लोगों ने गौतम के ही उपदेश को सुनकर जैन धर्म स्वीकार करके उनके पहले ही निर्वाण प्राप्त कर लिया। स्वयं गौतम को भगवान महावीर के निर्वाण तक अपनी मुक्ति हेतु प्रतीक्षा करनी पड़ी थी क्योंकि भगवान महावीर के प्रति उनकी एकान्त भक्ति बीच में बाधक थी। भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को इस सूक्ष्म दोष से छुटकारा दिलाने के लिए एवं बंधन के सुनहले धागे को काटने के लिए अन्त समय में उन्हें प्रचारार्थ बाहर भेज दिया। गौतम अभी प्रचारकार्य से लौटे भी नहीं थे कि उन्हें भगवान के देहत्याग की खबर मिली। यह खबर उन्हें आनन्द मनाते हुए देवताओं से मिली। फिर यह बात उन्हें समझते देर न लगी कि भगवान ने अंत समय में उन्हें बाहर क्यों भेज दिया था। तत्क्षण गौतम के अज्ञान का शेषांश भी दूर हो गया और वे कैवल्य को प्राप्त हो गये।

समवसरण-द्वय :

भगवान महावीर का प्रथम उपदेश स्थल जल मन्दिर से १ मील पूर्व है जिसे समवसरण कहा जाता है। इसके अलावे जल मन्दिर के मुख्य द्वार के सामने सड़क की दूसरी ओर एक दूसरा भी समवसरण है। दूसरे समव-सरण की एक टीलानुमा बनावट है जिसमें चार तहें हैं, जिनके निम्नतम आधार का व्यास ३२ फीट है। सबसे ऊपर ७८ फीट व्यास का एक गुम्बद है जिसके अन्दर महावीर के पद्-चिह्न अंकित हैं। मुझे बताया गया कि ये मौलिक पद्-चिन्ह हैं जिन्हें राजा नन्दवर्द्धन द्वारा पहले उपदेश स्थल पर स्थापित किया गया था। लेकिन गाँव से दूर होने के कारण नासमझ लोगों के द्वारा इनकी उपेक्षा होती रही। अतः इन पद्-चिह्नों को मूल स्थल से हटाकर यहाँ स्थापित किया गया। चार तहें वर्तमान में समवसरण के चार विभाग हैं। इसे पुराना समवसरण कहा जाता है।

भगवान के प्रथम उपदेश स्थल पर संगमरमर का एक नया मंदिर १९५७ ई० में निर्मित किया गया है। इस स्थल की प्राचीनता वहाँ पर खड़े एक प्राचीन स्तूप

से स्पष्ट होती है। समझा जाता है कि ५२६ ई० पू० में इसे निर्मित किया गया था। समवसरण के पुजारी ने मुझे चारो तरफ घुमाया और बताया कि समवसरण वास्तव में क्या होता है।

जैन जनश्रुति के अनुसार जब कभी और जहाँ भी कोई तीर्थंकर प्रवचन करना चाहते हैं तब देवराज इन्द्र वहाँ सभा मण्डप का निर्माण करते हैं। यही समवसरण कहलाता है। यह एक दीर्घाकारशंकु की तरह है, जो ३५००० फीट ऊँचा है तथा जिसमें २०००० सीढ़ियाँ हैं। इसके उच्चतम शिखर पर एक विशाल अशोक वृक्ष के नीचे पद्मासन की मुद्रा में भगवान महावीर बैठते हैं। इसमे चार समकेन्द्रीय सभा कक्ष या गैलरियाँ हैं। सबसे ऊपरी गैलरी में देवगण, संन्यासी, तपस्विनी एवं गृही भक्तगण बैठते हैं। इसके बाद वाला कक्ष पशु-पक्षियों के लिए है जहाँ वे अपना स्वाभाविक वैरभाव एवं भय को त्यागकर बैठते हैं। तीसरा कक्ष देवताओं के रथों एवं वाहनों के लिए है जिन्हें जैन पौराणिक गाथाओं के अनुसार जीवन्त सत्ता (विग्रह) माना जाता है। सबसे नीचे वाले कक्ष वस्तुतः चार बड़ी-बड़ी कीलों के रूप में हैं जिनमें जलचर जीव भगवान महावीर के उपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते हैं। समवसरण की रचना इस तरह की है कि प्रत्येक जीव जहाँ कहीं भी बैठा हो वहीं से भगवान को अपने सामने देख सकता है तथा भगवान, की दैवी शक्ति के माध्यम से उनके उपदेशों को अपनी भाषा में समझ सकने में समर्थ होता है। स्पष्टतः समवसरण विश्व की आध्यात्मिक समता एवं सृष्टि की स्वाभाविक एकता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

उपर्युक्त सारी विशेषताएँ संगमरमर से निर्मित नव समवसरण में छोटे रूप में अभिव्यक्त हैं। यह ३५ फीट ऊँचा है तथा इसमें २० सीढ़ियाँ हैं। प्रत्येक सीढ़ी मूल समवसरण की १०० सीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करती है। ऊपर में विशाल एवं सुन्दर ढंग से काटकर बनाये हुए एक अशोक वृक्ष के नीचे चारों तरफ मुखवाली भगवान महावीर की चार समान मानवकार संगमरमर-मूर्त्तियाँ हैं। मूर्तियों के चेहरे की अभिव्यक्ति अत्यंत विशिष्ट एवं प्रभावशाली है। तीन समकेन्द्रीय गैलरियाँ हैं जिनकी दीवारों पर यथास्थान देवताओं, संन्यासियों, तपस्विनियों पशुओं एवं देव-रथों का चित्रण है। इसके नीचे एक चौड़ा चबूतरा है जिसके चारों बगल में चार गड्ढे हैं जो चार झीलों के प्रतीक के रूप में हैं। सम्पूर्ण संरचना अत्यंत कलात्मक तथा आकर्षक है। चूँकि मैं बगल वाली धर्मशाला के एक कमरे में ठहरा हुआ था इसलिए मैं देखता था कि चाँदनी रातों में यह कितना मनमोहक एवं सुन्दर लगता है।

अतएव, समवसरण साधारण तरीके का मन्दिर नहीं है। यह विश्व-एकता के दिव्य आदर्श का पार्थिव प्रतिरूप है। उस संगमरमर समवरसण के नजदीक ही निर्माणधीन एक नया मन्दिर है जिसमें भगवान महावीर, गौतम एवं सुधर्म की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं। बीच में स्थित भगवान महावीर की मूर्ति के चेहरे पर शांति, आनन्द और दया की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

अन्य मन्दिर :

पावापुरी में कम महत्वपूर्ण दो और मन्दिर हैं। धर्मशाला से घिरा दिगम्बर जैन मन्दिर कमल-सरोवर के पूर्व में स्थित है। श्वेताम्बर जैन मन्दिर जल मन्दिर के प्रवेश द्वार के सामने सड़क की दूसरी ओर है। जल-मन्दिर दोनों सम्प्रदाय वालों के लिए समान रूप से पवित्र है और वे वहाँ अपनी पूजा अर्पित करते हैं।

ग्राम की झाँकी :

आते जाते चक्कदार पक्की सड़क होकर जल-मन्दिर तक का यातायात मुझे सड़क के दोनों ओर मीलों दूर तक धान के रंग की चादर ओढ़े दिखाई पड़ता था। खेतों के बीच कहीं कहीं ताड़ और आम के पेड़ों के झुरमुट भी थे। अपने भ्रमण के उतरार्द्ध में मुझे पुरी नामक एक गाँव से गुजरना पड़ा था जहाँ भारत के अन्य गाँवों की तरह मिट्टी तथा ईंट के छोटे छोटे घर अव्यवस्थित रूप से बने हुए थे। मैंने देखा स्त्री एवं पुरुष अपने सिर पर

धान के बोझे को ले जाकर खलिहान में ढेर लगाते हैं तथा उसको पीटकर अनाज निकालते हैं। फिर पुआल को जमाकर उससे घरों के छप्परों को छाया जाता है। सड़क के किनारे गहरी जमीन में पानी जमा होने से एक स्थायी तालाब बन गया था जिसमें गाँव के लड़के मछली मारते हैं, लोग कपड़ा धोते एवं स्नान करते हैं। तालाब के पश्चिमी किनारे पर एक उपेक्षित शिव मन्दिर है। गाँव में एक विद्यालय (जिसमें १०० छात्र हैं), एक डाकघर, पंजाब नेशनल बैंक की एक शाखा, एक दातव्य औषधालय, एक दवाखाना (जिसमें सिर्फ अत्यावश्यक अंग्रेजी दवाएँ मिलती है) आदि हैं। गाँवभर में मात्र एक टेलीफोन है। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली अनेक दुकानें हैं। जलमन्दिर वाले पुल के प्रवेश द्वार के समीप चाय की एक दुकान, फलों की दुकानें तथा चित्र गाइड बुक एवं पर्यटकों की पसंद की चीजों के कई केन्द्र हैं। मुझे मालूम हुआ कि ४०० परिवारों का यह पुरी नामक गाँव आस पास के सभी गाँवों से बड़ा हैं। इसकी आधी जनसंख्या हरिजनों की है। गाँव बहुत गन्दा है और यहाँ के निवासी बड़े ही निर्धन हैं। एक डाक्टर की मेरी आँखों ने शीघ्र ही Lathyrism के कई मरीजों को देख लिया। कई लोगों को Lathyrus Sativus नामक विषैली दाल को खाने के कारण Spastic goit लिये सड़कों पर चलते पाया। सम्यक् जल-निकास-व्यवस्था के अभाव में झोपड़ियों का गन्दा जल सड़क पर से होकर बह रहा था।

सम्पन्न जैन समुदाय प्रतिवर्ष संगमरमर मन्दिर के निर्माणार्थ एवं रक्षार्थ लाखों रुपयों की वर्षा करते हैं लेकिन गाँव के ऊपर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते हैं। मानो कि स्वर्ग और नरक एक-दूसरे के नजदीक अवस्थित हों। गन्दी बस्तियों से घिरे समृद्ध एवं भव्य मन्दिर—ये दृश्य भारत के कई तीर्थों में दिखाई पड़ते हैं। इसके अनेक कारणों में एक कारण इस प्रकार की शिक्षा है कि अपनी आय को सर्वप्रथम ईश्वर के निमित्त, फिर साधु संतों के लिए, उसके बाद गरीबों के लिए और अंत में बचे हुए भाग को अपने ऊपर खर्च करना चाहिए।

चूँकि अपने आप को अंत में रखना मुश्किल है, अतएव धार्मिक लोगों की आय से प्राप्त होने वाले लाभ से गरीब लोग ही वंचित रह जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने गरीब, असहाय एवं रोग-पीड़ितों को देवता के स्तर तक उठाकर इस व्यवस्था को बदल दिया है। मुझे माँ के जीवन की एक घटना याद आ गयी। एक शिष्य ने माँ को बताया कि श्री रामकृष्ण-भक्त बलराम बोस के पुत्र रामकृष्ण-बाबू ने ईश्वर और साधुओं की सेवा के निमित्त प्रचुर धन जमा कर रखा है। उस पर माँ बोल उठी क्या उसमें गरीबों की सेवा के लिए भी कुछ धन खर्च करने की चाह है। यह छोटी घटना दान की धारणा संबंधी श्री रामकृष्ण के नये आयाम को दिग्दर्शित करती है।

कुछ दिन पश्चात जिले के एक वरीय सरकारी पदाधिकारी से मुलकात होने पर उनके समक्ष मैंने इस बात की चर्चा की और इस बात की जिज्ञासा की कि गरीबों की स्थिति सुधारने के लिए क्या कुछ किया जाय। अगर जल मन्दिर एक प्राचीन तीर्थ है तो गाँव आधुनिक तीर्थ है जहाँ अभी भी जाग्रत-देवता रहते हैं और उनकी सेवा की अधिक आवश्यकता है। उनका (पदाधिकारी का) विचार था कि जब तक ग्रामीण जनता स्वयं अभिरुचि नहीं लेगी तब तक उनकी सहायता करना मुश्किल है। कई बार कोशिशें की गयीं लेकिन स्थानीय लोगों के सहयोग के अभाव में वे नाकामयाब रहीं। मैंने उनके कथन के सत्य की सराहना की फिर भी मेरी यह धारणा बनी रही कि यद्यपि लोगों के सहयोग से कार्य की सफलता शीघ्र होगी लेकिन उनके सहयोग के अभाव में भी अधिक तथा अनवरत प्रयत्न के द्वारा उनमें सहयोग की भावना जगाकर उनके जीवन की गति बदली जा सकती है। सदियों की गुलामी के कारण पशु के स्तर तक गिरे हुए इन्हीं अशिक्षितों, दरिद्रों एवं असहयोगी भारतीयों की देखरेख करने के लिए ही स्वामी विवेकानन्द ने अह्वान किया था। मैंने श्री राम छविला सिंह से अनुरोध किया कि अगर सरकारी सहायता उपलब्ध नहीं है तो स्थानीय नेताओं से सम्पर्क स्थापित

कीजिए। वे इस संबंध में यथाशक्ति काम करने के लिए राजी हो गये।

सर्वधर्मादर :

गेरुआ वस्त्र से आवृत एक हिन्दू संन्यासी का जैनियों के तीर्थ स्थान में घूमना स्थानीय ग्रामीणों के लिए असामान्य था क्योंकि वे केवल श्वेत वस्त्रावृत जैन साधुओं को ही प्राय: देखा करते थे। बच्चे मुझे देखकर भय से भाग खड़े होते। स्त्रियाँ खेतों से उत्सुकतापूर्वक मुझे देखती थीं। पुरुष मेरे निवास स्थान के बारे में बातें करते। तीसरे दिन जब मैं उधर होकर गुजर रहा था तो ग्रामीणों के एक दल ने मेरे पास आकर मेरा अभिवादन किया और पूछा, "क्या आप जल मन्दिर जा रहे हैं तथा समवसरण में रहते हैं?" जब मैंने स्वीकारात्मक उत्तर दिया तो उन्होंने मुझे जैन साधु समझा और पूछा, "आप गेरुआ वस्त्र क्यों पहनते हैं?" जब मैंने कहा कि मैं हिन्दू संन्यासी हूँ तो वे लोग बहुत खुश हुए। फिर उनलोगों ने जानना चाहा कि मैं जैन मन्दिर में ध्यान करने क्यों जा रहा था। मैंने प्रत्युत्तर दिया, "सभी धर्मों के अवतार एवं साधु-सन्तों का मैं आदर करता हूँ। मैंने ईसाइयों के साथ गिरिजाघरों में भी प्रार्थना की है। हिन्दूधर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के मन्दिरों में पूजा करने के अलावे मैंने गुरुद्वारा एवं मस्जिद में भी ध्यान किया है। लेकिन आकर्षक स्थापन, कलात्मक एवं सुन्दर आकृति, पवित्रता, शांत वातावरण आदि के कारण जैन मन्दिरों को मैं अधिक पसंद करता हूँ।"

दूसरी बात, जो ग्रामीणों को रहस्यमय प्रतीत हुई, यह थी कि मुझे समवसरण में ठहरने दिया गया था जहाँ गैर-जैनियों को रहने की अनुमति नहीं मिलती है। मैंने प्रश्न किया, "क्या एक दिगम्बर जैन को श्वेताम्बर धर्मशाला में रहने दिया जाता है?" उनका उत्तर था, एक समय था जब उनको अनुमति नहीं दी जाती थी। उस समय श्वेताम्बर को भी दिगम्बर धर्मशाला में नहीं ठहरने दिया जाता था। वे लोग लड़ने को तैयार रहते थे।" मैंने कहा, "क्या यह गलत नहीं है? क्या वे सभी भगवान महावीर की ही उपासना नहीं करते? यद्यपि मैं हिन्दू संन्यासी हूँ तथापि मैं सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य संयम आदि के उसी सिद्धांत पर चलता हूँ जिसका प्रचार भगवान महावीर ने किया और जिसका पालन जैन-साधु करते हैं।" शिव महिम्न स्तोत्र को उद्धृत करते हुए कहा,।

"रूचीनां वैचित्र्याद ऋजुकुटिल नान-पथ जुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् 'जैसे विभिन्न नदियाँ अलग-अलग टेढ़े-मेढ़े तथा सीधे रास्ते से होते हुए समुद्र में ही मिलती हैं, उसी प्रकार सभी धर्म एक ही लक्ष्य तक पहुँचाते हैं।' फिर गैर-जैनियों को जैन-धर्मशाला में क्यों नहीं रहने दिया जायगा यदि वे उन सभी नियमों, उपनियमों का पालन करते हैं और जैन धर्म के प्रति वैरभावापन्न नहीं हैं।

हमलोगों के बातचीत समाप्त हुई और मैंने अपना रास्ता पकड़ा। मुझे उस समय यह मालूम नहीं था कि श्वेताम्बर धर्मशाला में मेरा ठहरना वहाँ के प्रबन्धक से श्री आर०सी०सिंह द्वारा विशेष अनुमति लेने पर ही संभव हो सका था। विशेष अनुमति इस शर्त पर मिली थी कि मैं उनके सभी नियमों का पालन करूँगा। जैन धर्मशालाओं को खासकर मन्दिर से संलग्न-सार्वजनिक होटल नहीं बनने दिया जाता है। यही कारण है कि अनेक धर्मशालाओं के रहने के बावजूद पर्यटकों को ठहरने एवं भोजनादि में काफी दिक्कत होती है।

इस वार्तालाप के बाद मैं उत्सुकता का केन्द्र नहीं बना रहा, यद्यपि बच्चे तब भी मुझसे दूर ही रहते थे। मैंने कुछ माता-पिताओं को देखा कि वे अपने बच्चे को हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम करना सीखा रहे हैं। एक महिला अपने रोते बच्चे को चुप रहने के लिए अक्सर कहा करती, "साधु बाबा, इस लड़के को अपने साथ ले जाइए।" मैं मुस्कराकर चल देता। एक ग्रामीण, जो सड़क की बगल में रहता था अक्सर मुझसे बात-चीत करता था। मैंने उससे गाँव के विकास की समस्याओं पर

बात-चीत की। वह यह सब सुनकर आश्चर्य चकित हो गया क्योंकि वह किसी साधु से कभी सांसारिक चीजों के बारे में बात-चीत करने की उम्मीद नहीं रखता था। उसने स्पष्ट कहा कि अभी तक उसकी यही धारणा थी कि साधु अपना समय केवल ध्यान-धारणा में ही बिताते हैं। वह रामकृष्ण मिशन के बारे में कुछ नहीं जानता था। उसने मुझसे रामकृष्ण मिशन के बारे में जानकारी हासिल करनी चाही।

आनुष्ठानिक पूजा :

मुझे जल मन्दिर में तबतक रहने दिया जाता था जबतक मैं रहना चाहता था। अधिकतर तीर्थयात्री दर्शन पूजन करते, भजन गाते और कुछ मिनटों के अन्दर ही चले जाते। कभी-कभी पर्यटकों का दल आकार शोरगुल खड़ा कर देता। लेकिन ज्योंही वह दल चला जाता मन्दिर के सीमित स्थान में पुनः शान्ति विराजने लगती। साधारणतः रविवार को अधिक भीड़ होती थी तथा मन्दिर के सीमित स्थान में कहीं भी कोई जगह खाली नहीं रहती जिसके कारण मुझे सारा समय बाहर ही रहना पड़ता था। केवल पर्यटक ही नहीं, देश भर से भक्तों को आते देखकर मुझे आश्चर्य होता था।

ब्राह्मणवाद एवं कर्मकाण्ड के विरोधी होने के कारण जैनधर्म पुरोहित-तंत्र से पूर्णतया मुक्त होने में सफल हो गया है। मैंने कई जैन मन्दिरों में जेनऊधारी पुरोहितों को देखा। पूछताछ करने पर पता चला कि उनकी नियुक्ति जैनियों को दैनिक पूजा में सहायता करने के लिए की गयी है। मैंने यह भी देखा कि उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था जैसा एक वेतनभोगी सेवक के साथ किया जाता है। श्वेताम्बर जैनियों में कोई कोई सम्प्रदाय मूर्तिपूजा नहीं करता है। अतएव उनके सदस्य न मन्दिर जाते हैं और न आनुष्ठानिक पूजा करते हैं। आनुष्ठानिक पूजा सरलीकृत रूप में जैनियों के बीच भी प्रचलित हो गयी है। कई पुस्तकें भी उपलब्ध हैं जिनमें विभिन्न प्रकार की पूजाओं का वर्णन है।

भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करने एवं जैन अनुष्ठानों से अवगत होने के लिए एक दिन मैंने जल मन्दिर में पूजा और संध्या आरति की। स्नान करके एक साफ धोती पहनी और एक चादर से शरीर ढक लिया। मुँह एवं नाक को भी एक कपड़े से ढकना पड़ा। जैनी लोग पूजा के श्वेत या पीले सिल्क वस्त्रों को धारण कर बहुत ही धर्मपरायण लगते हैं। सर्वप्रथम मूर्ति से सटे चन्दन एवं पुष्पादि को रगड़-धोकर उठाया जाता है। कुश से बने ब्रश का व्यवहार इसके लिए किया जाता है। उसके बाद मन्त्रोच्चारण करते हुए पहले दूध से फिर जल से मूर्ति को स्नान कराया गया। तत्पश्चात पाँच सुन्दर वस्त्रों का व्यवहार बारी-बारी से मूर्ति को सुखाने के लिए किया गया। यहाँ तक की क्रिया को प्रक्षालन' कहा जाता है। अब मुख्य पूजा की शुरुआत हुई। जिसके अन्तर्गत धूपवत्ती जलाना, चन्दन लगाना, पुष्पार्पण, आरती करना आदि आता है। हिन्दू पूजा में किए जाने वाले न्यास, भूतशुद्धि आदि प्रारम्भिक क्रियाओं का सर्वथा अभाव था। पूजन सामग्री को प्रज्वलित धूपवत्ती के ऊपर एक या दो बार घुमाकर शुद्ध किया जाता है। चन्दन को क्रम से अँगूठे, घुटनों, प्रबाहुओं, कंधों, मस्तक, ललाट, ग्रीवा, वक्षस्थल, नाभि, हथेलियों पर लगाया जाता है। इसके लिए अलग-अलग मंत्र भी पढ़े जाते हैं। समयानुसार मूर्ति को और अधिक चन्दन एवं पुष्प से सुसज्जित किया जा सकता है।

आरति के समय एक घण्टा बजाया गया। संध्यारति में घंटाध्वनि तथा स्तोत्र पाठ करते हुए प्रज्वलित दीप दिखाया जाता है। दिगम्बर जैन चन्दन और पुष्प अर्पित नहीं करते हैं। अक्षत, नैवेद्य तथा फलादि भी चढ़ाये जाते हैं। मैंने इन सब वस्तुओं को नहीं चढ़ाया। एक टेबुल पर चावल कणों को इस प्रकार सजाया जाता है कि ऊपर में अर्द्धचन्द्र, मध्य में तीन बिन्दुएँ तथा सबसे नीचे स्वस्तिक का चिन्ह बन जाय। इस चित्र के ऊपर मिश्री, बरफी आदि मिठाइयाँ चढ़ाई जाती हैं। वहाँ प्रसाद पाने का कोई रिवाज नहीं है। जो कुछ भी चढ़ाया जाता है सभी ब्राह्मण पुरोहित को दे दिया जाता है।

मंत्र प्रायः हिन्दी या गुजराती दोहे-कविताओं के रूप में होते हैं जिन्हें आसानी से याद किया जा सकता है। कुछ पाठ पाली भाषा में भी हैं जिन्हें भक्तगण स्मरण रखते हैं। अधिकांश स्त्रियाँ स्तव पाठ तथा पूजादि कर सकतीं थी। वह दृश्य बहुत ही दिलचस्प था जब मैंने देखा कि एक स्त्री भक्तों के एक दल के बीच धाराप्रवाह रूप से पाली भाषा में एक पाठ कर रही थीं और पुरोहित की तरह उन्हें बीच-बीच में कह रही थीं, "अब नवकार मंत्र का चार बार पाठ कीजिए, अब अक्षत प्रदान कीजिए आदि।" अन्तिम अर्पण करने का मंत्र संस्कृत में था जिसके प्रारंभ में ॐ तथा अंत में स्वाहा है। मैंने दक्षिण भारतीय जैन भक्तों के एक दल को भी सभी २४ तीर्थंकरों की वृहद पूजा संस्कृत श्लोकों तथा कई बीज मंत्रों की सहायता से करते देखा।

तीर्थाटनांत :

अपने प्रवासकाल में एकबार मैं राजगीर गया और वहाँ अति वृद्ध जैन-संत श्री अमर मुनि का दर्शन किया। उन्होंने बताया कि हिन्दुओं के प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगों की तरह राजगीर और नालन्दा भी आध्यात्मिक ज्योति से पूर्ण हैं। उन्होंने मुझे गम्भीर रात्रि में पावापुरी स्थित जलमन्दिर में ध्यान करने की सलाह दी। अपने निवासकाल की अंतिम रात्रि जल मन्दिर में बिताकर मैंने उनकी इच्छा पूर्ण कर दी। जैसे-जैसे रात्रि बढ़ती गयी, शांति भी अधिकाधिक रूप से विराजने लगी। मध्य रात्रि होते होते रात्रि-प्रहरियों तथा कुत्तों की आवाजें भी बन्द हो गयी। ऐसा मालूम पड़ता था कि देश—काल से परे राज्य में पहुँच गया।

साधारणतया साधक अन्य सम्प्रदायों के मन्दिरों से लाभ नहीं उठा पाते हैं। यदि वे अपने आप को पावापुरी में व्याप्त जैन - तीर्थंकर के आध्यात्मिक स्पंदन के साथ एक कर सकें तो उन्हें बहुत ही लाभ होगा। लेकिन अन्य तीर्थों की तरह यहाँ भी कई तरह की बाधाएँ हैं जिन्हें धैर्यपूर्वक सहन करना ही पड़ता है।

पावापुरी में मेरे उन अविस्मरणीय दिनों का शीघ्र ही अंत हो गया। ज्यों ही कार समवसरण को छोड़कर चक्करदार सड़क पर गति बढ़ाती हुई आगे बढ़ने लगी, मैं मन ही मन अपने अन्दर एक परिवर्त्तन का अनुभव करने लगा। हरी-पीली चादर ओढ़े जिन धान के खेतों ने मेरा स्वागत किया था अब वे उदास पड़े थे। उनके स्थान पर नंगा, भूरा विशाल भूमिखण्ड दिखाई दे रहा था जिसके वक्षस्थल पर कहीं-कहीं नये बोये हुए गेहूँ के हरे-भरे पौधे, सरसों के चमकते पीले फूल हवाओं के थपेड़े खा रहे थे। कहीं-कहीं ट्रैक्टरों, बैल-गाड़ियों एवं हलवाहों को भी देखा जा सकता था। ग्रामीण लोग भी बदल चुके थे। उनकी निर्दोष आँखें, जो कभी एक अनजान साधु को निहारा करती थीं, अब रामकृष्ण मिशन के परिचित साधु के प्रति कृतज्ञता के आँसुओं से भींग चुकी थीं, क्योंकि इसी साधु ने उनके पास श्रीरामकृष्णदेव की जीवन-प्रदायिनी वाणी को पहुँचाया था। अंततः— मैं अपने अन्दर हुए परिवर्त्तन के प्रति भी सजग था। वहाँ से लौटने के बाद शहर के इस शोर-शराबे के बीच अपने अन्दर मैं अभी भी अनुभव करता हूँ—अनुभव की समृद्धता, तथा पूर्णता का भाव और शान्ति।

□

पढ़िए ! पढ़िए !!

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित हिन्दी त्रैमासिक

विवेक ज्योति : सम्पादक स्वामी आत्मानन्द

वार्षिक १० रुपये मात्र, एक प्रति ३ रुपये, आजीवन ग्राहकता शुल्क (२५ वर्षों के लिए)—१०० रुपये

सम्पर्क सूत्र : रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर—३९२००१ (म० प्र०)

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"दुर्गापूजा के प्रायः दो महीने पूर्व एक दिन वे (ठाकुर) हमें साथ लेकर पथुरियाघाटा (यदु मल्लिक के घर, गये। यदु मल्लिक को मैंने उनके उद्यान में देखा था, परन्तु पहले कभी उनके घर नहीं गया था। तब उनके घर (सिंहवाहिनी) देवी थीं। इसीलिए वे हमें लेकर देवी का दर्शन करने को गये थे। देवी-दर्शन के पश्चात् उन्होंने बाबू (यदु बाबू) के बारे में पूछताछ की। यदु बाबू तब संगमरमर की एक लम्बी मेज पर नंगे बदन सोये हुए थे। उन्हे देखकर यदु बाबू ने कहा—'आओ, आओ, छोटे भट्टाचार्य ! (यदु बाबू ठाकुर को छोटे भट्टाचार्य कहते थे)। इधर तो तुम आते ही नहीं — माँ आयी है, इसीलिए तो हमारी याद आयी है, इसीलिए तो तुम आये हो।' यदु बाबू की यह बात सुनकर वे (ठाकुर) बोले —'तुम कैसे आदमी हो, बताओ तो ? माँ आयी हैं और मुझे खबर भी नहीं दिया ?' ठाकुर की बात पर यदु बाबू ने कहा—'देखो छोटे भट्टाचार्य ! माँ की खबर तो तुमसे अधिक और किसी के पास मैंने नहीं देखी। परसों ही माँ आयीं और उनके आते न आते तुम भी हाजिर हो गये। तुम्हें समाचार देने का समय ही कहाँ मिला ? ठाकुर हँसते हुए—'सो तो है। अब थोड़ा माँ का प्रसाद मँगाओ। क्या ऐसे ही लौट जाना उचित होगा ?' यदु बाबू ने उसी प्रकार लेटे हुए ही किसी को माँ का प्रसाद लाने भेजा। वह अविलम्ब प्रसाद ले आया। वे दरवाजे के सामने ही खड़े रहे और वहीं प्रसाद ग्रहण कर गाड़ी में चढ़ने जा रहे थे, उसी समय यदु बाबू ने कहा—'क्यों, माँ के साथ मुलाकात नहीं की ?' इस पर ठाकुर वहीं से पुकार कर कहने लगे—'कहाँ हो यदु की माँ, एक गिलास पानी लाओ न !' ठाकुर का कण्ठस्वर सुनकर यदु की माँ नीचे आयीं। ठाकुर उसके हाथ से एक चुल्लू जल पीकर गाड़ी में बैठे। गाड़ी में अन्यान्य भक्तों ने ठाकुर से कहा—'महाराज, अब आप इतने बड़े आदमी के घर मत जाया कीजिए। ऐसे आदमी के पास आप जाते ही क्यों है ? आपको इन लोगों ने बैठने तक को नहीं कहा। ऐसे आदमी के घर आकर व्यर्थ ही क्यों अपमानित होते हैं।' भक्तों की बात पर ठाकुर हँसते हुए बोले—'अजी ! ये लोग विषयी हैं, सारे समय विषय को लेकर मतवाले रहते हैं। ये लोग इतने विषय-चिन्तन के बीच भी जो देवी की पूजा कर रहे हैं, यही तो काफी है। तुम लोग तो उनता भी नहीं करते। उसने (यदु बाबू) मुझे बैठने को कहा या नहीं कहा, इससे तुम लोग को क्यों तकलीफ होती है ? इनके मन की अवस्था तुम लोग भला क्या समझो ? देवी का दर्शन करने आये थे, प्रसाद मिल गया, इतना ही पर्याप्त है। ऐसे समय में देवी का प्रसाद कौन देता है ? तुम लोग क्या घर के मालिक को देखने आये थे कि बैठने को नहीं कहा इस पर क्षोभ व्यक्त कर रहे हो ?' (भक्तों में से जिन्होंने यदु बाबू के बारे कहा था) वे लोग उनकी बात सुनकर चुप रह गये।""ठाकुर इसी प्रकार हमें सावधान कर देते थे, कहते—'साधु होना चाहते हो तो अभिमान का त्याग करना होगा। कोई मानता है अथवा नहीं—इन सब पर ध्यान देने से काम नहीं चलेगा।'" क्रमशः

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोग : रु० ११.००

वेदान्त के मूल तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन।

राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) :— रु० ९.००

प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएँ और मार्गप्रदर्शन।

कर्मयोग : रु० ६.००

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएँ, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें—इस रहस्य का विवरण।

भक्तियोग :— रु० ४.००

भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएँ—इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन।

प्रेमयोग :— रु० ५,००

प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन।

❀ ❀ ❀

स्वामी विवेकानन्द के दस भागों में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य में से विशेष महत्वपूर्ण व्याख्यानों, प्रवचनों, लेखों, पत्रों, सम्भाषणों एवं कविताओं का प्रातिनिधिक संकलन

विवेकानन्द साहित्य संचयन

मूल्य : १०.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :—

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

I love you all because you are the children of gods, and because you are the children of the glorious forefathers. How then can I cause you ? Never. All blessings be upon you. (iii-227)

SWAMI VIVEKANANDA

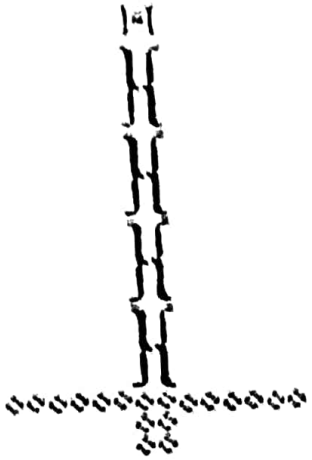

With Best Compliments From :

THE SIRPUR PAPER MILLS LIMITED

(Regd. Office : 5-9—201/2 & 2A, Chirag Ali Lane, Hyderabad—500 001 A.P.)

Manufacturers of quality printing-writing, packing-wrapping papers and paper boards.

Also manufacture superior quality rag content papers and air mail papers.

MILLS : SIRPUR—KAGHAZ NAGAR—505 296

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

नीति

यौवन

विकास

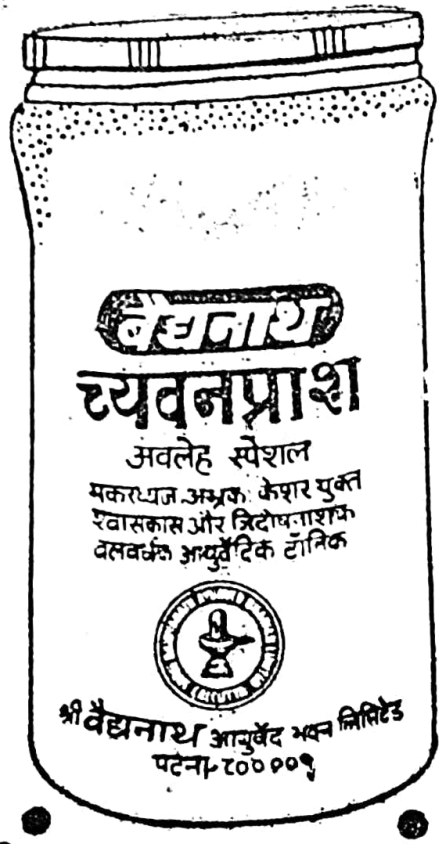

कफ खांसी नाशक

दिमागी ताजगी

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

Infinite patience, infinite purity, and infinite perseverance are the secret of success in a good cause.

—Swami Vivekananda

With Best Compliments From

SHRI B. N. DHORE

At—AMAGAON

Post & Taluka—PARA SHIWANI

Dist NAGPUR

विवेक वाणी

हम ब्रह्म हैं

हम ही समस्त जगत् के वे अनन्त सत् हैं तथा हमने जड़ भावापन्न होकर यह क्षुद्र क्षुद्र नर-नारीरूप धारण किया है— हम एक व्यक्ति की मधुर बात से गल जाते हैं तथा एक व्यक्ति की कड़ी बात से गरम हो उठते हैं ! कितनी भयानक निर्भरता है कितना भयानक दासत्व है ? मैं – जो सकल दुःख-सुख के अतीत हूँ, समस्त जगत् हा जिसका प्रतिविम्ब स्वरूप है– सूर्य, चन्द्र, तारा, जिसके प्राणों के लघु कण मात्र हैं—वह मैं इस प्रकार भयानक दासभावापन्न हो गया हूँ ! हमारी देह में तुम्हारे एक चिमटी के काटने पर हमें कष्ट हाता है। कोई यदि एक मीठी बात करता है, त्योंही हमें आनन्द हाने लगता है। हमारी कैसी दुर्दशा है, देखो— हम देह के दास, मन के दास, जगत् के दास, एक अच्छी बात के दास, एक बुरी बात के दास, वासना के दास, सुख के दास, जीवन के दास, मृत्यु के दास— हम सब वस्तुओं के दास हैं ! यह दासत्व हटाना होगा, कैस ? 'इस आत्मा के सन्बन्ध में पहले सुनना होगा, तत्पश्चात् उसे लेकर मनन अर्थात् विचार करना होगा, तत्पश्चात् उसका निदिध्यासन करना होगा।' अद्वैतज्ञानी को यही साधना प्रणाली है। सत्य को पहले सुनना होगा, फिर उस पर मनन करना होगा, उसके पश्चात् उसे निरन्तर दृढ़ करते रहना होगा। सर्वदा ही सोचो, 'हम ब्रह्म हैं।' अन्य सब विचारों को दुर्बलताजनक मानकर दूर कर देना होगा। जिस किसी विचार से तुमको अपने नर-नारी होने का ज्ञान होता है, उसे दूर कर दो। देह जाय मन जाय, देवता भी जायँ, भूत-प्रेत आदि भी जायँ, उस एक सत्ता के अतिरिक्त सब जायँ। 'जहाँ एक व्यक्ति अन्य को देखता है, एक व्यक्ति अन्य कुछ सुनता है एक व्यक्ति अन्य कुछ जानता है, वह क्षुद्र अथवा ससीम है; तथा जहाँ एक व्यक्ति अन्य को देखता नहीं, एक व्यक्ति अन्य कुछ सुनता नहीं, एक व्यक्ति अन्य कुछ जानता नहीं, वही भूमा अर्थात् महान् अथवा अनन्त है।' वही सर्वोत्तम वस्तु है, जहाँ विषयी और विषय एक हो जाते हैं। जब हम ही श्रोता और हम ही वक्ता हैं, जब हम ही शिष्य हैं, जब हम ही स्रष्टा और हम ही सृष्ट हैं, केवल तभी भय का नाश होता है क्योंकि हमें भयभीत करनेवाला और कोई अथवा कुछ नहीं है। हमारे अतिरिक्त जब और कुछ भी नहीं है, तब हमें भय दिखायेगा कौन ? दिन प्रतिदिन यही तत्व सुनना होगा। अन्य सब विचारों को दूर कर दो—और सब दूर तोड़कर फेंक दो, निरन्तर उनकी आवृति करो।

—स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० खड ६ पृष्ठ २९५ ९६)

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
के सौजन्य से
श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।